

स्वर्ग में परिवार नियोजन

ना. वि. सप्रे

स्वर्ग में परिवार-नियोजन

स्वर्ग में परिवार-नियोजन

(हास्य-व्यंग्य)

ना० वि० सप्रे

'अपना प्रकाशन' वाराणसी

'अपना प्रकाशन'
एच्—८, छित्तूपुर कालनी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी—५

मूल्य : तीन रुपये
पहला संस्करण : १९७०

मुखपृष्ठ : वासुदेव स्मार्त
मुद्रक : ज्योतिष प्रकाश प्रेस,
कालभैरव मार्ग, वाराणसी।

ये कहानियाँ

श्री ना० वि० सप्रे द्वारा विरचित 'स्वर्ग में परिवार-नियोजन' नामक पुस्तक को मैं बड़ी उत्सुकता के साथ आद्योपान्त पढ़ गया। श्री सप्रे मराठी भाषाभाषी हैं परन्तु उनका हिन्दी के लिए प्रेम अगाध है। आपने कई मराठी उपन्यासों का सफल अनुवाद हिन्दी में किया है। हास्य एवं व्यंग्य लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। 'खिक्-खिक्' नामक पुस्तक को लिखकर आपने हास्य एवं व्यंग्य के क्षेत्र में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। 'स्वर्ग में परिवार-नियोजन', 'यक्ष-प्रश्न' तथा 'बापू जन्मशती' नामक कहानियाँ बहुत ही सुन्दर बन पड़ी हैं। भाषा बड़ी सजीव एवं विषयानुकूल है।

श्री सप्रे को मैं उनकी इस कृति के उपलक्ष्य में हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे भारती के भाण्डार को भरते रहेंगे।

डा० विजयपालसिंह

दिनाङ्क
६-१०-७०

एम. ए. हिन्दी, एम. ए. संस्कृत
पी-एच. डी., डी. लिट्,
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

क्रम

स्वर्ग में परिवार-नियोजन

यक्ष प्रश्न

ऊर्फ

पुलिस अफसर के १६ सवाल

अभी बहुत दिन नहीं हुए। इसी कांग्रेसी राज में किसी गाँव में पाँच मित्र रहते थे। उनमें परस्पर इतना प्रेम-भाव था कि गाँव के लोग उन्हें कौतुकवश पाँच पाण्डव कहा करते थे! एक का नाम था युधिष्ठिर, दूसरे का नाम भीम, तीसरे का नाम अर्जुन, चौथे का नकुल और पाँचवाँ था सहदेव! हाँ, इस बार प्रत्येक पाण्डव की अलग-अलग द्रौपदी थी।

पाँचों पाण्डव गाँव के ही स्कूल में साथ-साथ पढ़े और फिर शहर के एक कालेज से बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। पहले उनका यह विचार था कि पढ़ाई-लिखाई के बाद गाँव में ही बसा जाए और खेती के आधुनिक साधनों का उपयोग कर अपने गाँव को एक आदर्श गाँव बना दिया जाए। लेकिन उनके भाइयों ने उनसे झगड़ा मोल ले लिया और उन्हें एक इञ्च जमीन तक के लिए मुहताज कर दिया।

पाँचों पाण्डव कई दिन तक अँग्रेजी अखबार पढ़ते रहे और अपने लायक नौकरियाँ ढूँढ़ते रहे। अन्त में एक दिन उन्होंने रेलवे सर्विस कमीशन के विज्ञापन के अनुसार आवेदन-पत्र भर कर भेज दिए और परीक्षा के निमन्त्रण की प्रतीक्षा करते रहे। परीक्षा के निमन्त्रण भी आ गये। पड़ोस के ही शहर में इम्तहान होने वाला था। पाँचों पाण्डवों ने

एक पोटली में सतुवा, नमक और मिर्चा बाँध लिया। सुबह की गाड़ी से वे शहर आ पहुँचे। पाण्डव बहुत ही गरीब थे, अतः उन्होंने किसी होटल में खाना नहीं खाया, बल्कि शहर पहुँचते ही थोड़ा सत्तू घोल कर खाया और और वे इम्तहान के स्थान पर जा पहुँचे।

पेपर पूरा के करने बाद जब वे बाहर आये उस समय वे बिल्कुल थक गये थे। उनकी हालत बस देखने लायक हो गयी थी। बाल बिखरे हुए थे, चेहरे पर पसीने की धाराएँ बह रही थीं और भूख तथा प्यास के मारे उनके होंठ सूख गये थे।

"सुबह का सत्तू तो कब का पच गया, दादा! अब भूख के मारे पेट में चूहे दौड़ रहे हैं। कहीं कुछ खा-पी लिया जाए।"

युधिष्ठिर ने दार्शनिक के से स्वर में कहा—सबसे पहले भूख पर निग्रह करना सीखो, नकुल। इसी भूख का अनुचित लाभ उठाकर आज व्यापारी वर्ग रुपए का एक सेर गेहूँ बेच रहा है। फिर पेट पर हाथ घुमाते हुए कहा—"वैसे, भूख तो मुझे भी लगी है, लेकिन तुम तो जानते ही हो कि शहर में कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं मिल पाती। अतः मेरा विचार है कि हम लोग कुछ दूर तक इसी प्रकार चलते चलें। आगे जाकर जो भी पहला कुआँ या बगीचा दिखाई देगा, वहाँ विश्राम करेंगे और फिर हाथ-मुँह धोकर सत्तू का जलपान करेंगे।"

युधिष्ठिर के मीठे वचनों का प्रभाव अन्य चार पाण्डवों के चेहरों पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। उनके चेहरों पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वे नए उत्साह से चलने लगे। थोड़ी दूर चलने के बाद पहला बगीचा दीखते ही नकुल ने कहा—"अब मुझसे नहीं चला जाता, दादा!"

युधिष्ठिर ने हँसकर कहा—"ठीक है! तुम कहीं से जल का प्रबन्ध करो। तब तक हम लोग बगीचे के उस चबूतरे पर तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं।"

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर नकुल तत्क्षण जल की व्यवस्था में निकल पड़े। पन्द्रह मिनट बीत गए, लेकिन नकुल जल लेकर नहीं आए। युधिष्ठिर को चिन्ता हुई। उन्होंने चिन्तित स्वर में कहा—"सहदेव! जरा देखना, कहीं नकुल भैया मानव निर्मित किसी संकट में तो नहीं फँस गए हैं?"

दादा की आज्ञा पाते ही सहदेव हिरन की तरह उछलते हुए नकुल की खोज में चल पड़े।

सहदेव को गए भी पन्द्रह मिनट व्यतीत हो गए, लेकिन न नकुल ही लौटे न सहदेव ही। भीम की भूख बढ़ रही थी। उन्होंने कहा—"दादा मुझे तो लगता है कि ये लड़के शहर की रंगीनियों में कहीं खो गए हैं। आप आज्ञा दें तो मैं अभी उन्हें पकड़ कर ले आऊँ!"

युधिष्ठिर ने कहा—"भारतवासी के लिए इतना आवेश उपयुक्त नहीं है, भीम! तुम्हें इस बात का कदापि विस्मरण नहीं होना चाहिए कि हम शान्त देश के नागरिक हैं।"

भीम किसी प्रकार शान्त हुए तो युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—"भैया मुझे तो लगता है कि ये दोनों शहर की भूलभुलैया में कहीं खो गए हैं। तुम जाकर उनका पता करो और आते समय जल भी ले आओ।"

दादा की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर अर्जुन अपने मित्रों की खोज में चल पड़े। आधा घण्टे तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब अर्जुन नहीं लौटे तब युधिष्ठिर ने कहा—"अब तुम ही बचे हो, भीम! जाओ, किसी भी तरह अपने मित्रों को ढूँढ़ लाओ। यदि आवश्यक हो तो पड़ोस के थाने में रिपोर्ट लिखवा दो, ताकि पुलिस की सहायता प्राप्त हो सके।"

भीम जाने लगे तो युधिष्ठिर ने उन्हें रोक कर कहा—"और हाँ, शरीफों का-सा व्यवहार करना और किसी से मार-पीट न कर बैठना।"

भीम के चले जाने के बाद युधिष्ठिर बिल्कुल अकेले रह गए। सायंकाल की छायाओं के बढ़ने के साथ-साथ उन्हें वह एकाकीपन और

भी खलने लगा। गाड़ी का समय भी हो रहा था। उन्होंने सत्तू का झोला उठाया और वह बगीचे के फाटक के बाहर आए। पटरी पर कुछ देर खड़े होकर वह इधर-उधर देख ही रहे थे कि इतने में एक पुलिस कॉंस्टेबल ने उनकी ओर सन्देहभरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"इधर-उधर क्या देख रहे हो जी?"

"कुछ नहीं···कुछ नहीं···मैं तो अपने साथियों को देख रहा था," युधिष्ठिर ने घबराए हुए स्वर में कहा।

"साथियों को देख रहे थे?" पुलिस कॉंस्टेबल ने दाहिने हाथ में के डंडे को बाएँ हाथ की हथेली पर आहिस्ता-आहिस्ता थपकते हुए कहा—"तो तुम अपने गिरोह के साथियों को खोज रहे थे! चलो, बड़े साहब कब से तुम्हारा ही इन्तजार कर रहे हैं।"

"भैया! हमारा कोई गिरोह नहीं है। हम तो यहाँ इम्तहान देने आए थे।"

"जो कुछ कहना है, बड़े साहब से कहना। वह पुलिस चौकी में तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं।"

"पुलिस चौकी में चलना होगा?" युधिष्ठिर ने डरते-डरते पूछा।

"जी नहीं, ससुराल में!"

"तो आपका ही नाम धर्मराज है?" खाकी वर्दी में सुसज्जित पुलिस अफसर ने युधिष्ठिर का नखशिखान्त निरीक्षण करने के बाद पूछा।

"जी नहीं, मेरा नाम युधिष्ठिर है।" इतना कहते समय भी युधिष्ठिर के पैर काँप रहे थे।

"एक ही बात है।" पुलिस अफसर ने जेब में से सिगरेट निकाल कर, उसे सुलगा कर धुएँ का एक छल्ला उछालते हुए कहा—"धर्मराज हो या युधिष्ठिर, कोई फर्क नहीं पड़ता। अच्छा, यह बताइए कि सच बोलने के अलावा आप और क्या काम करते हैं?"

"जी! अभी तो हम लोग नौकरी की तलाश कर रहे हैं।"

"हम लोग ? तो आपका कोई गिरोह भी है ?" पुलिस अफसर का चेहरा सख्त हो उठा—"अब तक कितने डाके डाल चुके हो ?"

"डाका ?" युधिष्ठिर की धोती ढीली होने लगी। "आप कैसे डाके की बात कर रहे हैं, सरकार ?"

युधिष्ठिर का वह निष्पाप चेहरा देखकर पुलिस अफसर असलियत जान गया, लेकिन निर्दोष को दोषी न साबित कर दे, वह पुलिस कर्मचारी कैसा ! उसने बातचीत का सिलसिला जारी रखा, "तो आप किसी फिल्म कम्पनी में से भाग कर आ रहे हैं।"

"हुजूर !! नाटक कम्पनी या फिल्म कम्पनी में काम करना तो दूर रहा, हम लोग नाटक तथा सिनेमा देखना भी पाप समझते हैं।"

"तब तो आप महाभारत-काल के युधिष्ठिर मालूम होते हैं।" पुलिस अफसर का चेहरा अब तक सौम्य हो चुका था।

"जी ? आप महाभारत काल की कैसी बातें कर रहे हैं, सरकार ? उस समय तो मेरे परदादा के परदादा का भी जन्म नहीं हुआ था।"

"आप बहुत घुटे हुए आदमी हैं। आप की बुद्धिमानी का लोहा तो साक्षात् यमराज ने भी मान लिया था, फिर आदमी का क्या कहना !"

"यमराज ने लोहा मान लिया था ? कैसा लोहा··· !" युधिष्ठिर का मस्तिष्क अब जवाब दे रहा था।

"अजी, भूल गए ? जब साक्षात् यमराज ने यक्ष का रूप लेकर आपसे सवाल पूछे थे···?"

युधिष्ठिर की समझ में अब बात कुछ-कुछ आने लगी थी। मौके का फायदा उठाने की लालसा उनके मन में हिलोरें मारने लगी। काफी साहस करके उन्होंने कहा—"वैसे, जवाब देने में मैं भी महाराज युधिष्ठिर से कम नहीं हूँ। आप सवाल तो पूछिए।"

पुलिस अफसर की आंखों में कुटिलता चमक उठी। उसने गर्वोक्ति से कहा—"और अगर आप कामयाब न हुए तो ?"

"तो क्या ?"

पुलिस अफसर ने एक कोठरी की ओर इशारा कर दिया।

"ठीक है, आप सवाल तो पूछिए।"

पुलिस अफसर का पहला सवाल था—"क्या कारण है कि सूरज दिन भर आसमान में चमकता रहता है ?"

युधिष्ठिर का पेटेन्ट उत्तर था—"ताकि बिजली का खर्च कम हो !"

पुलिस अफसर के मन पर इसका क्या प्रभाव हुआ, यह कहना कठिन था। उसने तत्काल ही दूसरा सवाल किया—"वह कौन-सा शास्त्र है जिसके अध्ययन से मनुष्य शीघ्र बुद्धिमान हो जाता है ?"

युधिष्ठिर ने कहा—राजनीति !"

पुलिस अफसर का तीसरा सवाल था—"पृथ्वी से अधिक सहनशील कौन है ? कारण भी बतलाइए।"

युधिष्ठिर का उत्तर था—"लेखक की पत्नी ! क्योंकि वह अपने पति की हर अच्छी और बुरी रचना को धीरज के साथ सुनती है, उसकी प्रशंसा करती है और घर आने वाले पति के प्रशंसकों को चाय पिलाती है।"

पुलिस अफसर का चौथा सवाल था—"पुलिस और चोर में कौन श्रेष्ठ है ?"

"चोर," युधिष्ठिर ने कहा, "क्योंकि पुलिस का अस्तित्व चोर के बगैर असम्भव है।"

पुलिस अफसर का पाँचवा सवाल था—"आसमान से ऊँची वस्तु क्या है ?"

"नेताओं के नारे !"

"सूखे हुए तृण की अपेक्षा जर्जर वस्तु क्या है ?"

"चुनाव में हारा हुआ नेता—जिसकी जमानत भी जब्त हो गई हो !" युधिष्ठिर का उत्तर था।

पुलिस अफसर का सातवाँ प्रश्न था—"मुसाफिर का साथी कौन ?"

"परिचारिका ! जिसे अंग्रेजी में एयर होस्टेज भी कहते हैं।" युधिष्ठिर ने सामान्य ज्ञान के साथ-साथ अपना अंग्रेजी का ज्ञान भी प्रकट कर दिया।

युधिष्ठिर की प्रतिभा से चकित पुलिस अफसर ने आठवाँ सवाल किया—"घर बैठे आदमी का सच्चा दोस्त कौन है ?"

युधिष्ठिर ने रटा-रटाया उत्तर दोहराया—"कमाने वाली पत्नी !"

"मरने के बाद मनुष्य का पीछा कौन करता है ?" पुलिस अफसर का नवाँ सवाल था।

और, जवाब हाजिर था—"पत्रकार तथा डाक्टर !"

"सबसे बड़ा पात्र क्या है ?"

"महापात्र।"

"वह क्या है, जिस का त्याग करने पर मनुष्य जनता-जनार्दन का प्रियपात्र बन जाता है ?"

"मंत्रिपद की कुर्सी !"

युधिष्ठिर ने थक कर कहा—"अब जल्दी छुट्टी दीजिए, नहीं तो मेरे मित्र मुझसे नहीं मिल पाएँगे और हमारी गाड़ी छूट जायगी।"

"अभी तो सिर्फ ग्यारह सवाल हुए हैं। कुछ और सवाल पूछ लूँ!"

"पूछिए !"

"वह क्या चीज है जिसके जाने से दुःख की अपेक्षा प्रसन्नता ही अधिक होती है ?"

"मेहमान !"

पुलिस अफसर ने तेरहवाँ सवाल किया—"वह कौन-सी वस्तु है, जिसका त्याग करने पर मनुष्य धनी हो जाता है ?"

"गरीबी !"

"जनप्रिय नेता होने के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता होती है ?—खानदान, व्यवहार या उच्चशिक्षा ?"

युधिष्ठिर ने बिना सिर खुजलाए ही उत्तर दिया–

"इनमें से एक भी बात नहीं। जनप्रिय नेता बनने के लिए केवल दो बातों की आवश्यकता होती है–लम्बी बातें और झूठे वादे!"

पुलिस अफसर ने प्रसन्न हो कर कहा–"अच्छा दुनिया का सबसे बड़ा सत्य क्या है?"

"चीनी झूठ।" युधिष्ठिर ने लम्बी साँस लेकर कहा।

पुलिस अफसर ने युधिष्ठिर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा–"अब तक तो तुमने खूब जवाब दिये हैं, युधिष्ठिर! लेकिन अब जो सवाल मैं पूछने वाला हूँ, उसका उत्तर केवल शब्दों में नहीं मिलना चाहिए।" इतना कह कर पुलिस अफसर ने सामने खड़े पुलिस कान्स्टेबल की निगाहों में कुछ इस प्रकार देखा कि उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। लेकिन युधिष्ठिर की समझ में कुछ भी नहीं आया। उन्होंने पूछा–"कैसा सवाल, सरकार?"

पुलिस अफसर ने रुक-रुक कर, मानों सवाल के हिज्जे करते हुए कहा–"वह क्या चीज है जो मनुष्य को सब खतरों से बचाती है?" पुलिस अफसर की आँखों में विचित्र-सी चमक आ गई थी।

युधिष्ठिर ने अपने आज तक के संचित ज्ञान-भण्डार को कुरेदना शुरू किया। धीरे-धीरे, उन्हें मस्तिष्क में प्रकाश पड़ता हुआ-सा दिखाई दिया। उन्होंने अपनी जेबें टटोलीं और एक जेब में से बड़ी हिफाजत के साथ तह करके रखा हुआ पाँच का नोट पुलिस अफसर की ओर सरका दिया।

पुलिस अफसर के व्यक्तित्व में एकाएक फुर्ती आ गई। उसने अपने सामने खड़े पुलिस कांस्टेबल को डपट कर कहा–"आइन्दा से इस बात का ध्यान रखो कि कौन शरीफ है और कौन उचक्का।"

फिर युधिष्ठिर की ओर निर्देश करते हुए कहा–"बाबू साहब शरीफ आदमी हैं। इन्हें बाइज्जत छोड़ दिया जाए और इनके साथियों को भी!"

नेतापालन

मुद्दत हो गयी, जब किसी भारतीय आत्मा ने यह महसूस किया था कि भारत जैसे समृद्ध देश में गरीबी का होना एक पहेली है। वह पहेली आज भी वैसी की वैसी बनी हुई है। अलबत्ता, कुछ अन्य पहेलियाँ विचारकों के सामने आयी हैं—मसलन विद्यार्थियों की समस्या, बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या, इत्यादि-इत्यादि···। मेरा ख्याल है, जनसंख्या को रोकने से विद्यार्थियों की समस्या धीरे-धीरे आप ही समाप्त हो जायगी। लेकिन, जो पहेली अभी तक विचारकों के मस्तिष्क में नहीं आयी है, वह है प्रतिभासम्पन्न देश में मूर्खता का होना। मेरा ख्याल है, आज यही पहेली हमारे देश की प्रगति में बाधक सिद्ध हो रही है। इसका सर्वशुद्ध हल मालूम हो जाय तो गेहूँ की फसल दुगुनी हो जाय, भाषा-विवाद मिट जाय, विदेशी मुद्रा का संकट टल जाय। इसे मूर्खता नहीं तो और क्या कहा जाय कि हम गो-पालन, मछली-पालन तथा कुक्कुट-पालन जैसी योजनाओं पर अपना धन और श्रम जाया कर रहे हैं, और नेतापालन जैसी व्यावहारिक और कमखर्चीली योजना को नजर-अन्दाज कर रहे हैं। प्राचीन काल में राजा-महाराजा लोग कलाकारों को प्रोत्साहन देते थे, उन्हें पालते-पोसते थे। उन्हें राज्य की ओर से मुफ्त भोजन मिलता था, परिवार की परवरिश के लिए उन्हें जागीरें दी जाती थीं। कलाकार अपने अन्नदाता का गुणगान करता था तथा कला की अभिवृद्धि करता था। इसी दौर में, कुछ राजाओं ने खिलाड़ियों और पहलवानों का पोषण

किया। पहलवान कसरत करते थे, दंगल लड़ते थे और विजयश्री प्राप्त कर राजा-महाराजाओं की प्रतिष्ठा में चार-चाँद लगा देते थे। लेकिन राज्यों के विलय तथा राजा-महाराजाओं के अन्त के बाद, कलाकारों और पहलवानों का जो हश्र हुआ, वह किसी से छिपा नहीं है। राज्य की ओर से मिलनेवाली सहायता के अभाव में कितने ही कलाकार काल-कवलित हो गये, तो कुछ अन्य कलाकार अपनी कला को सरेआम बेच रहे हैं। कितने ही पहलवान खूराक के अभाव में सिकुड़ गये तो कुछ अब फिल्मों में काम कर रहे हैं, और खूबसूरत अभिनेत्रियों के साथ इश्क लड़ा रहे हैं! सचमुच, आज रामभक्त हनुमान् की आत्मा को कितना कष्ट हो रहा होगा!

लेकिन आज का युग राष्ट्रीयता का युग है। हर समस्या को आज राष्ट्रीय स्तरपर सोचना पड़ता है। पहले मुर्गी या पहले अण्डा, जैसी राष्ट्रीय पहेली का समाधान 'मुर्गीपालन' जैसी राष्ट्रीय योजना को कार्यान्वित कर, सरकार ने दूरदर्शिता से काम लिया है। कुछ नेताओं के अनुसार, आज समस्याओं के पीछे दलगत राजनीति और नेताओं का हाथ होता है। मेरे विचार में, नेताओं की समस्या का हल, 'नेतापालन' जैसे उद्योग को राष्ट्रीय उद्योग स्वीकृत कराना ही है। मेरे पहले के बुजुर्गों ने कहा भी है कि 'विषस्य विषमौषधम्!' उन्होंने अपनी बात संस्कृत में कही थी और मैं हिन्दी में कह रहा हूँ, बस यही अन्तर है। यदि नेतापालन की राष्ट्रीय आवश्यकता पर विचार नहीं किया गया, तो कल नेताओं की भी वही हालत होगी, जो आज गायों की हो रही है।

सबसे पहले, हमें यह सोचना है कि नेता जीवधारी किन-किन परिस्थितियों में जन्म लेता है? जिस प्रकार, शुद्ध, स्वच्छ एवं हवादार स्थान में कीटाणु जन्म नहीं लेते, उसी प्रकार सर्वसामान्य परिस्थितियों में 'नेता जीवधारी' जन्म नहीं ले सकता। मानसिक असन्तुलन, बेरोजगारी, भयावह सन्त्रास (अपने देशी एवं विदेशी सन्दर्भों में) जीवन से

कटाव की परिस्थितियाँ ही नेता की उत्पत्ति के मूल स्रोत हैं। इन्हीं परिस्थितियों में, जहाँ प्रतिभाशाली युवक 'अकहानी' तथा 'अब्स्ट्रेक्ट' शैली के चित्र बनाता है, वहाँ साधारण युवक नारा लगाता हुआ, नेता बन जाता है।

अन्य छोटे तथा बड़े उद्योगों की ही तरह, 'नेतापालन' उद्योग सरकारी तथा गैरसरकारी दोनों ही क्षेत्रों में खोला जा सकता है। पहले मुहल्ले-मुहल्ले में, फिर पार्टी स्तरपर तथा तदुपरान्त प्रान्तीय स्तरपर इसका विस्तार किया जाना चाहिये। प्रसन्नता की बात है कि कुछ पार्टियाँ इस मसले पर न केवल गम्भीरतापूर्वक विचार ही कर रही हैं बल्कि इस योजना को कार्यान्वित भी कर चुकी हैं।

पचास के पार पहुँचे हुए लोग, शायद इस बात को स्वीकार न करें, लेकिन जो युवक हैं, जिनकी नसें अभी भींगी नहीं हैं (या बहुत कम भींगी हैं) वे भली-भाँति जानते हैं कि आज की युवा पीढ़ी के संत्रास का कारण पुरानी पीढ़ी ही है। पुरानी पीढ़ी के लोग दंभ, ढोंग तथा रूढ़िवादिता के फेर में, युवा पीढ़ी को पनपने ही नहीं देना चाहते। अतः सबसे पहले विद्रोह की आग घर-घर में फैलाई जानी चाहिये। इस कार्य के लिए विभिन्न राजनीतिक पार्टियों को, नये युवकों को तैयार करना चाहिये। विद्रोह की आग जब घर-घर में फैलने लगे तो उसे स्कूलों में पहुँचाना चाहिये। आज तक स्कूलों के टीचर छोटे-छोटे विद्यार्थियों पर अपनी प्रभुसत्ता समझते आ रहे हैं। अपनी अल्पज्ञता एवं मूर्खता को छिपाने के लिए बच्चों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करते चले आ रहे हैं। विद्यार्थियों के मन में अपने गुरुजनों एवं माता-पिताओं के प्रति आदर के नाम पर ढोंग फैलाते रहे हैं। सच पूछिए तो स्कूल-टीचरों की जिम्मेदारी माँ-बाप से भी अधिक है। क्योंकि इन्हीं स्कूल-टीचरों के गलत निर्देश के कारण आज का युवक कुंठाग्रस्त, भयग्रस्त तथा मनोबलविहीन हो गया है। 'नेतापालन' उद्योग के व्यवसायियों को चाहिये कि वे अपनी एक यूनिट

स्कूल के बच्चों में स्थापित करें, जो समय-समय पर टीचरों का मार्गदर्शन करे तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सही रास्ते पर ले आये। स्कूल के व्यवस्थापकों को भी चाहिये कि वे ऐसी यूनिटों को बढ़ावा दें, क्योंकि जब टीचरों का सही मार्गदर्शन होगा, तभी उनकी नौकरी बरकरार रह सकती है।

स्कूल के ही ढंग पर, किन्तु उच्च-स्तरीय नेताओं के यूनिट महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में होने चाहिये। इनका प्रमुख कार्य विद्यार्थियों की सुख-सुविधा, उनकी मनोवृत्ति आदि का अध्ययन करना तथा उसके आविष्कार के लिए मार्ग प्रशस्त करना, यह होना चाहिये। कब-कब विद्यार्थियों की मनोवृत्ति पढ़ाई की ओर है और कब-कब नहीं है, इसका सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद, इन नेताओं को अपनी रिपोर्ट विद्यालय के प्रशासन को प्रस्तुत करनी चाहिये। हो सकता है कि एक प्रकार के नेता पढ़ाई जारी रखने के मार्ग में सिद्धहस्त हों, और अन्य प्रकार के नेता पढ़ाई बन्द रखने में कुशल हों। अतः इन दोनों प्रकार के नेताओं की आवश्यकता को ध्यान में रखकर, उनका उचित समादर होना चाहिये। इन नेताओं की कार्यकुशलता का पूरा एतबार हो जाने के बाद, उन्हें प्रशासन में उच्च पदोंपर भी लिया जा सकता है।

यह तो सर्वविदित है कि नेता समाज की सरल और सहज उत्पत्ति नहीं है। यदि वातावरण शान्त रहा, तो नेता का दम घुट जायगा। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि तनाव की स्थिति हमेशा बनाये रखी जाय। नेता एक स्थान पर तनाव कम करेंगे, लेकिन साथ ही दूसरे स्थान पर तनाव बढ़ाने की कोशिश करेंगे। सौभाग्य की बात है कि भारत जैसे देश में, जहाँ अनेक धर्म और परम्पराओं को पनपने की पूरी छूट है, तनाव की स्थिति आये दिन बनी ही रहती है। उदाहरण के लिए, यदि एक किस्म के नेता इस प्रकार की घोषणा करते हैं कि हिन्दू धर्म और हिन्दू राष्ट्र की कल्पना राष्ट्रीय एकता के लिए

घातक है, तो दूसरे किस्म के नेता तुरन्त इस घोषणा का खण्डन करेंगे और उक्त नेता का बहिष्कार करने के लिए उसके सामने उग्र प्रदर्शन आदि करेंगे। प्रदर्शन करने के लिए स्कूल, कालेजों और विश्व-विद्यालयों के लड़के काम आयेंगे। जन-जागृति को जीवित रखने के लिए, विभिन्न प्रकार के आन्दोलन चलाये जा सकते हैं। राज्य द्वारा स्वीकृत जितनी भी भाषाएँ हैं, उन सबके नाम पर एक-एक आन्दोलन तो चलाया ही जा सकता है। जनता भी कितने गर्व और आश्चर्य से इस नजारे को देखेगी कि एक ही आदमी कभी तो एक भाषा का विरोध करता है, तो कभी उसी भाषा को गले लगाने के लिए प्रयत्नशील होता है।

नेताओं का पालन देश के भावी नेतृत्व के लिए हो रहा है, इसका पूरा ख्याल रखा जाना चाहिए। आन्दोलन आदि के दौरान, बहुत सम्भव है कि पुलिस लाठी या गोली चलाये। लेकिन लाठी खाना या 'गोली खाना' नेतापालन कार्यक्रम के अन्तर्गत नहीं आता। नेताओं को इस प्रकार की तालीम दी जाय कि वे पुलिस की लाठी अथवा गोली से हमेशा दूर रहें, किन्तु जब कभी लाठी खानेवालों का जिक्र हो, या ऐसे लोगों की सूची प्रकाशित हो, तो नेताओं का नाम उसमें सर्वप्रथम हो।

अपने देश की सभ्यता और संस्कृति विविध प्रकार की है। कहीं नेतृत्व का एक फार्मूला कामयाब हो सकता है, तो वही फार्मूला किसी अन्य स्थान पर फेल हो सकता है। अतः संस्कृति के विभिन्न आयामों का दर्शन कराने के लिए, नेताओं को भारत-दर्शन कराना चाहिए। इससे एक तो नेताओं को अपने कर्मक्षेत्र की कल्पना होगी, साथ ही नेताओं में विचारों तथा कार्य के विभिन्न तरीकों का आदान-प्रदान होगा।

नेताओं का रहन-सहन और खान-पान सादगी का आदर्श होना चाहिए। उनके मन पर किसी भी विचार-धारा का बोझ न बढ़े, इसका पूरा ध्यान रखा जाए। एक ही वाक्य को घुमा-फिराकर कहने की उनमें क्षमता होनी चाहिए। नेता किसी एक पार्टी या परम्परा की

विरासत नहीं है, बल्कि वह पूरे राष्ट्र की मिलकियत है, इसका खास तौर पर ध्यान रखा जाना चाहिए। उनमें ऐसी दीक्षा का प्रभाव हो कि वे बड़ी आसानी से, एक पार्टी को छोड़कर दूसरी पार्टी में प्रवेश कर सकें, तथा इस प्रकार देश की अधिक से अधिक सेवा कर सकें। नेताओं का स्वास्थ्य तथा मनोबल हमेशा ऊँचा होना चाहिए। सीधे-सादे आदमी की यह विशेषता होती है, कि अपमान होने पर उसका मनोबल गिर जाता है, लेकिन नेता वह विनष्ट वस्तु है, जो अपमान होने पर और भी अधिक खूँखार तथा तेजस्वी बन जाता है—मार खाने पर और भी अधिक लतियर तथा नेता बन जाता है।

गैर-सरकारी क्षेत्र में तो 'नेतापालन' व्यवसाय पनपेगा ही, लेकिन सरकार को भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहना चाहिए। सरकार की दमन नीति सदैव ही आलोचना का विषय रहती आयी है। हड़ताली कर्मचारियों पर डंडे बरसाने पर, जनता सरकार को कोसती है और डंडे न बरसाने पर उसकी (सरकार की) ढुलमुल नीति की आलोचना करती है। ऐसी अवस्था में सरकार के पास इसके अलावा और दूसरा चारा ही क्या है, कि वह ऐसी नीतियों पर चले, जिससे सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। सरकार को चाहिये कि वह नेताओं की एक ऐसी पलटन तैयार करे, जो समय आने पर मार-पीट, डंडाबाजी आदि कर सके, और शान्ति के मौके पर भाषण तथा भजन करती रहे। कुछ नेताओं को, विभिन्न सामुदायिक एवं रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रखना चाहिए तथा समय-समय पर इन्हें 'राष्ट्रीय-संत' की उपाधि से अलंकृत करना चाहिये। कभी-कभार ये राष्ट्रीय-संत राजनीतिक समस्याओं पर भी अपना मन्तव्य प्रकट कर सकते हैं। लेकिन उनके वक्तव्य की भाषा इतनी गूढ़ और कठिन होनी चाहिए कि कोई भी उसका अर्थ समझ न सके। सीमावर्ती क्षेत्रों पर, सरकारी क्षेत्र में ऐसे नेता तैयार करने चाहिए जो ऐसा आतंकपूर्ण वातावरण बनाये रखें कि दुश्मन का हौसला भी पस्त हो जाय।

नेताओं से, समय-समय पर सम्पूर्ण अनशन, आंशिक अनशन तथा 'रिले अनशन' जैसे कार्यक्रम भी करवाने चाहिए। जनता का विप्लवकारी एवं जीवंत अंश जब इस प्रकार सरकारी एवं गैरसरकारी क्षेत्र में, अपने सुनियोजित ढंग से कार्य करता रहेगा, तो सरकार का ढेरसारा सिरदर्द अपने आप कम हो जायगा और वह अच्छा प्रशासन कर पायेगी। पी० ए० सी० तथा पुलिस का कार्य, खुद जनतांत्रिक नेताओं द्वारा सम्पन्न होने के कारण सरकार का उन-उन मदों में होने वाला खर्च भी कम हो जायगा। जनता सरकार की जी-खोलकर प्रशंसा करेगी और आँखें बन्दकर सरकारी बक्स में वोट डालेगी।



स्वर्ग में क्रान्ति

भगवान् इन्द्र का सिंहासन डगमगा रहा था। यूं तो, सिंहासन डगमगाने का यह कोई पहला मौका नहीं था, किन्तु हर बार इन्द्र भगवान् का खुफिया विभाग इतना दक्ष रहा करता था कि स्वर्ग से लेकर पाताल तक में उनके विरुद्ध होने वाले षडयन्त्र का तुरन्त पता लग जाता था। उन्हों ने स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल लोक में विभिन्न प्रकार के राडार लगवा दिये थे, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियों का अंकन करते थे। शत्रु को निरस्त्र करने का उनका तरीका मौलिक होता था। अगर कभी कोई महान् पुण्यात्मा इन्द्रपद की प्राप्ति के लिए तपश्चर्या करता होता, तो वे किसी अप्सरा को भेजकर उसका तप भंग करवा देते, या अगर कोई सत्तारूढ़ नेता ईमानदारी का आश्रय लेकर आदर्श शासन स्थापित करने का प्रयास करता, तो वे कुछ लोगों को फोड़कर उस मन्त्रिमण्डल को छिन्न-भिन्न करवा देते, ताकि उनका अपना आदर्श अक्षुण्ण बना रहे और कोई मानव-जन्तु उसे प्राप्त न कर सके। किन्तु इन दिनों भगवान् इन्द्र का अप्सराओं-वाला फार्मूला फेल कर गया था। एक तो, मृत्युलोक में ही कितनी ही मानवदेही अप्सराएँ विचरण कर रही थीं, जिन्हें देखकर सचमुच की अप्सराएँ भी दाँतों तले उगली दबा लेती थीं, और दूसरे—भगवान् इन्द्र द्वारा भेजी गयी कुछ अप्सराएँ परिवार-नियोजन वालों की कार्य-सीमा में आ गयी थीं और अब पूर्ण रूप से परिवार नियोजित हो गयी थीं। मानव का तप भंग करने की दृष्टि से, वे अब पूर्णतः बेकार हो गयी थीं।

लेकिन इस बार भगवान् इन्द्र की परेशानी का कारण कोई तपस्वी या नेता नहीं बल्कि कामिनी नाम की एक युवती थी। लेकिन युवती साधारण नहीं थी। जब तक वह मृत्युलोक में रही, तब तक उसका नाम रोज ही समाचार पत्रों में आता रहता था और उसके सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित होते रहते थे। खिलते यौवन में वह रंगमंच तथा फिल्मों की प्रसिद्ध अभिनेत्री रह चुकी थी, ढलते यौवन में उसने राजनीतिक रंगमंच पर कदम रखा था और प्रौढ़ा होते-होते वह इस क्षेत्र में इतनी लोकप्रिय हो गयी कि देश तथा विदेश की बड़ी-बड़ी सरकारों ने तथा संस्थाओं ने उसे गाँधी, नेहरू तथा लेनिन शान्ति पुरस्कारों से सम्मानित किया था। मृत्यु के बाद जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुँची, तो भगवान् इन्द्र भी उसके सौन्दर्य से प्रभावित हो गये। उन्होंने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि उसका तुरन्त कायाकल्प कर दिया जाय और उसे अप्सराओं की श्रेणी दी जाय।

और उसी दिन से स्वर्ग का मंत्रिमण्डल डगमगा उठा। यूं तो मंत्रिमण्डल नाम मात्र का था, क्योंकि वहाँ शताब्दियों से भगवान् इन्द्र पुश्त दर-पुश्त शासन करते चले आ रहे थे। अन्य मंत्रियों की भी वही हालत थी। ब्रह्मा जी से लेकर कुवेर जी तक सभी अपने-अपने आसनों पर चिपके बैठे थे। वे धाँधलियाँ भी कम नहीं करते थे लेकिन भगवान् इन्द्र उनकी गलतियों पर ध्यान नहीं देते थे। शायद वे इस बात से भी डरते थे कि कहीं अन्य मंत्री उनकी पोल न खोल दें। मंत्रिमण्डल के अलावा, उनके दरबार में अप्सराएँ भी थीं, लेकिन उन्हें न मंत्रियों का दर्जा ही दिया जाता था, न उनकी कोई आवाज ही थी। अलबत्ता उनका उपयोग भगवान् इन्द्र की मर्जी से होता था। अफवाह तो यह भी थी कि वे हाजिरी तो सरकार में देती हैं किन्तु काम भगवान् इन्द्र का करती हैं।

नवागता अप्सरा कामिनी देवी ने स्वर्ग की वह हालत देखी तो उसे भगवान् इन्द्र की मोनोपोली पर गुस्सा हो आया। वहाँ नाम तो

लोकतन्त्र का था, लेकिन भगवान् इन्द्र की परमानेण्ट डिक्टेटरशिप, चल रही थी। उसने तुरन्त सभी अप्सराओं को एकत्र किया और उन्हें सम्बोधित कर कहा, "बहनो ! अब तक आप देवताओं के लिए मनोविनोद का साधन बनती रहीं। आप ने कई बार भगवान् इन्द्र का आसन बचाया, कई बार आपने अपना सतीत्व नष्ट कर स्वर्ग की देवियों की इज्जत बचायी। लेकिन इसके बावजूद क्या कभी भगवान् इन्द्र ने आपका ख्याल किया ? क्या कभी उन्होंने आपको मन्त्रिपद दिया ? लेकिन अब यह नहीं चलेगा। अब तक यहाँ शिक्षा की कमी थी। किसी को पता नहीं चलता था कि बाहर की दुनिया में क्या चल रहा है। लेकिन मैंने दुनिया देखी है। हम अप्सराओं की संख्या भी कम नहीं है। यदि हम चाहें तो भगवान् इन्द्र को हटाकर अपना मंत्रिमण्डल खुद स्थापित कर सकती हैं।"

"लेकिन हमें वोट कौन देगा ? एक अप्सरा ने शंका प्रस्तुत की।

"हमें वोट कौन देगा ? यह पूछो कि कौन वोट नहीं देगा ? मैं जब भारतवर्ष में थी, तो मैंने एक बहुत बड़े सेठ के विरुद्ध चुनाव-प्रचार का कार्य किया था। सेठ जी ने वोटरों को सौ-सौ रुपया दिया था, किन्तु मेरे रूप के जादू ने ऐसा प्रभाव दिखलाया कि लाखों रुपया खर्च करने के बाद भी सेठ जी एक लाख वोटों से हार गये।"

"तब तो हम भी जीत सकती हैं।" एक अप्सरा ने प्रसन्न होकर कहा।

"हम केवल जीतेंगी ही नहीं, बल्कि इन्द्र भगवान् का आसन लेकर रहेंगी।" कामिनी देवी ने गर्व की साँस लेकर कहा। उसकी महत्वाकांक्षा उसके रक्तिम चेहरे पर पूरी तरह खिल उठी थी। उपस्थित सभी अप्सराएँ कामिनी के उस रूप की ओर ईर्ष्या से देख रही थीं और मन ही मन आश्चर्य कर रही थीं।

अपनी सहेलियों का विश्वास प्राप्त कर लेने के बाद, कामिनी ने अपने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर ली। उसने अपनी सहेलियों की सहायता से एक दीर्घसूत्रीय कार्यक्रम भी बना लिया, जिसके आधार पर स्वर्ग का विस्तार और विकास करने की योजना थी। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कार्यक्रम भी थे, जिन पर अविलम्ब कार्य करना था—

१. स्त्री और पुरुष इस आधार पर मन्त्रिमण्डल का गठन करना।

२. मन्त्रिमण्डल तथा अन्य छोटे-मोटे पद पचास प्रतिशत महिलाओं के लिए सुरक्षित रखना।

३. मृत्युलोक से आयी हुई संभ्रान्त महिलाओं के लिए विशिष्ट पदों का निर्माण करना।

४. प्रतिष्ठित देश कहलाने के लिए विदेशों से अन्न, वस्त्र तथा युद्ध-सामग्री सहायता के रूप में प्राप्त करना। साथ ही, कलाकारों के परस्पर आदान-प्रदान द्वारा, विदेशों में कला का प्रचार-प्रसार करना।

५. स्वर्गीय एकता को कायम रखने लिए समय-समय पर निकटवर्ती देशों द्वारा सीमा पर तनाव की स्थिति उत्पन्न कराना तथा स्वर्ग की एकता का बखान करने वाले गीतों का प्रचार-प्रसार करना।

६. अन्य देशों की बढ़ती हुई जनसंख्या को दृष्टि में रखते हुए, ब्रह्माजी का जन-निर्माण विभाग अविलम्ब बन्द कराना तथा उसके स्थान पर परिवार-नियोजन विभाग स्थापित करना। अन्य देशों में घटती हुई मृत्यु संख्या को बढ़ाने के लिए, 'जनसंहार' कार्यक्रम को बढ़ावा देना तथा इसके लिए अन्य देशों से सहयोग प्राप्त करना।

कुछ अप्सराओं ने परिवार-नियोजन कार्यक्रम पर आपत्ति की। उनका कहना था कि इससे अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलेगा। लेकिन कामिनी देवी ने कहा कि आधुनिका बनने के लिए, इस कार्यक्रम की

नितान्त आवश्यकता है। बहरहाल, कामिनी देवी ने भगवान् इन्द्र से टक्कर लेने के लिए कमर कस ली।

भगवान् इन्द्र का दरबार उस समय नृत्य की लय पर थिरक रहा था। प्रेक्षा-गृह में दरबारियों के बैठने की समुचित व्यवस्था थी। एक कक्ष में देवादिगण बैठे हुए नृत्य का भाव समझ रहे थे, दूसरे कक्ष में बैठी हुई अप्सराएँ अपनी सहेली द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे नृत्य को मन ही मन दोहराती हुईं, सहेली के रूप और यौवन से ईर्ष्या कर रही थीं। नृत्य सहसा समाप्त हुआ। भगवान् इन्द्र ने हर्षध्वनि की और फिर अपने गले में से मोतियों का हार निकाल कर, नर्तकी को सम्बोधित करते हुए कहा, "हम तुम्हारे नृत्य से विशेष प्रसन्न हैं, गणिके! इधर आओ, और यह पुरस्कार स्वीकार करो।" गणिका, भगवान् इन्द्र के सिंहासन की ओर अग्रसर हुई। उसने भावपूर्ण मुद्रा में अपना दाहिना हाथ पुरस्कार लेने के लिए आगे बढ़ाया। इतने में, महिलाओं के कक्ष में से कामिनी देवी तेजी से बाहर आयीं और आदेशयुक्त स्वर में बोली, "रुक जाओ।"

उस स्वर से भगवान् इन्द्र स्तब्ध रह गये। गणिका भी अपने स्थान पर जड़-सी बनी हुई खड़ी रह गयी। कामिनी देवी सभामण्डप के बीचोबीच आकर खड़ी हो गयी और बोली, "हमें यह पुस्कार नहीं चाहिये।"

"तो कैसा पुरस्कार चाहिये देवी?" भगवान् इन्द्र ने मक्खन से भी मुलायम स्वर में पूछा।

"इन्द्रासन!" कामिनी देवी ने निर्भय स्वर में कहा।

भगवान् इन्द्र का चेहरा क्रोध से संतप्त हो उठा। फिर भी, उसे नियन्त्रित रखते हुए उन्होंने कहा, "जानती हो, तुम क्या कह रही हो?"

"यह मैं नहीं, तमाम अप्सराएँ कह रही हैं। आज तक आपने लोकतन्त्र के नाम पर डिक्टेटरशिप का आनन्द लिया, लेकिन अब

आपके दिन लद गये हैं। हम अप्सराओं ने अपना अलग दल बना लिया है और हमें विश्वास है कि कुछ देवादिगण भी हमारे दल में सम्मिलित हो जायेंगे। हमारा दल सरकार बनानेकी स्थिति में है।" कामिनी देवी के इस वक्तव्य के समर्थन में, सभी अप्सराएँ कामिनी देवी के पीछे आकर खड़ी हो गयीं।

कामिनी देवी के उस वक्तव्य से, भगवान् इन्द्र के साथ-साथ अन्य कई देवतागण भी घबरा उठे। ब्रह्माजी को अपनी नौकरी की चिन्ता होने लगी तो भविष्य में अधिक काम करना पड़ेगा इस भय से यमराज को पसीना छूटने लगा। देवताओं ने आपस में मन्त्रण की और वे सब भगवान् इन्द्र के पास आकर, उनसे सहायता की प्रार्थना करने लगे। लेकिन जिसे अपनी ही जान के लाले पड़े हों, वह वेचारा दूसरों की क्या मदद कर सकता है। वे वेचारे इसी सोच में डूबे हुए थे कि सहसा एक खम्भे में से नारदजी निकल पड़े। वही पुराना ड्रेस और चेहरे पर वही कुटिल मुस्कान! उन्हें हँसते देखकर भगवान् इन्द्र ने कहा, "यहाँ हम प्रलय की प्रतीक्षा कर रहे हैं और आपके चेहरे पर यह मधुर मुस्कान?"

नारदजी ने सहज-सुन्दर स्वर में कहा, "प्रलय का प्रसंग तो कई बार आ चुका है, देव!"

"लेकिन इस बार का प्रसंग सब से अधिक विकट है। इस बार शत्रु घर का ही प्राणी है।"

"तो क्या हुआ? उसे समझाइए, बुझाइए।"

"मैंने क्या कम प्रयत्न किया, देवर्षिजी? अब आप ही हमें इस संकट से पार लगाइए।"

नारदजी ने तथास्तु कहा और अन्तर्ध्यान हो गये।

दूसरे ही क्षण, नारद जी अप्सराओं के कक्ष में थे, जहाँ अपनी सहेलियों से घिरी कामिनी देवी, हँसी के फौव्वारे छोड़ रही थी।

नारदजी को देखते ही, सभी अप्सराएँ खड़ी हो गयीं और झुककर उन्हें अभिवादन करने लगीं। नारदजी ने अभिवादन स्वीकारने के बाद, मंद मुस्कान बिखरते हुए कहा—

"अभिनन्दन स्वीकार करो कामिनी देवी।"

कामिनी देवी ने आश्चर्य से पूछा, "अभिनन्दन? वह किसलिए?"

"तुम्हारी सफलता के लिए। स्त्री होते हुए भी तुमने इत बुद्धिमान् देवों को उलझन में डाल दिया इसलिए! तुम्हारी बुद्धिमानी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ।

नारदजी की प्रशंसा से फूल कर कामिनी देवी बोलीं, "तो मैं यह विश्वास करूँ कि हमें आपका समर्थन प्राप्त है?"

"हर अच्छे कार्य के लिए मेरा समर्थन है।" नारदजी ने कहा, "लेकिन मेरी समझ में यह बात नहीं आयी कि और भी महत्त्वपूर्ण चीज़ों के रहते तुमने इन्द्र का सिंहासन ही क्यों चुना?"

"मैं समझी नहीं।" कामिनी देवी ने आश्चर्य से कहा, "इन्द्र के लिए सिंहासन से कीमती चीज क्या हो सकती है?"

"मैं तुम्हें बताता हूँ!" कहकर नारदजी कामिनी देवी के निकट आ गये और उसके कान में कुछ तो कहने लगे। उसे सुनकर, पहले तो कामिनी गम्भीर बनी खड़ी रही, लेकिन फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

कामिनी देवी की उस खिलखिलाहट से स्वर्ग की शान्ति पर छाये काले बादल छट गये। तनाव की स्थिति क्षण भर में दूर हो गयी। नारदजी के प्रयत्नों से देवगण तथा अप्सराओं के पक्ष में शीर्षवार्ता संभव हो सकी जिसमें इन्द्र भगवान् तथा कामिनी देवी ने भाग लिया। यह वार्ता काफी देर तक चली और जब वार्ता के बाद भगवान् इन्द्र और कामिनी देवी वार्ताकक्ष के बाहर आये तो वे काफी प्रसन्न दिखाई दिये। स्वर्ग के पत्रकारों ने उन्हें तुरन्त घेर लिया। उनमें से एक ने, जो काफी

स्मार्ट और ढीठ दिखाई देता था, इन्द्र भगवान् से पूछा, "क्या आप अपना सिंहासन कामिनी देवी को देने के लिए सहमत हो गये हैं?"

इन्द्र भगवान् ने स्वर्गीय हँसी बिखेरते हुए उत्तर दिया, "स्वर्ग का सिंहासन मेरी अपनी संपत्ति नहीं, वह मेरे मंत्रिमण्डल का दायित्व है। जहाँ तक मेरी निजी संपत्ति का सवाल है, मैंने अपना हृदय-सिंहासन कामिनी देवी को अर्पित कर दिया है—इस आशा के साथ कि वह यह भेंट स्वीकार करेंगी।" पत्रकार ने कामिनी देवी की ओर देखा लेकिन उसके चेहरे पर लज्जायुक्त हँसी के अलावा और कोई भी भाव नहीं दिखाई दिया।



शान्ति-घाटी की सभ्यता

पचीसवीं शताब्दि के अन्तिम चरण में जब विश्व में समाजवाद की स्थापना हो चुकी थी, उस समय भारतवर्ष की समाजवादी सरकार ने अपने पूर्वजों की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए प्राचीन अवशेषों की खोजबीन करने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार भारत के विभिन्न भागों में खुदाई की गयी जिनमें नाना प्रकार की प्राचीन वस्तुएँ तथा कागज-पत्र प्राप्त हुए हैं। भारत के पूर्वीय तथा पश्चिमी भागों में खुदाई करते समय दो बड़े-बड़े शहर भी प्राप्त हुए हैं। यद्यपि इन शहरों के नाम अभी तक ज्ञात नहीं हो सके हैं, फिर भी ये शहर आज भी अपनी संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस खुदाई में जो सामग्री प्राप्त हुई है, उससे ज्ञात होता है कि उस समय भारतवर्ष में शान्ति का वातावरण था। अन्य देशों के इतिहास के अध्ययन से भी मालूम होता है कि बीसवीं शताब्दि में भारतवर्ष ने कितनी ही बार विश्व को महायुद्ध के संकट से बचाया था। इसी आधार पर इतिहासकारों ने बीसवीं शताब्दि की भारत की सभ्यता को शान्ति-घाटी की सभ्यता कहा है।

खुदाई से प्राप्त सामग्री तथा विद्वानों की सम्मतियों के आधार पर 'शांति-घाटी' की सभ्यता की निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डाला जा सकता है—

सामाजिक दशा

१. नगर-व्यवस्था

खुदाई में प्राप्त इन नगरों के खँडहरों के पीछे अभी भी बीसवीं शताब्दि का वैभव झाँक रहा है। इन्हें देख कर लगता है कि इनका निर्माण भारत के तथा विदेशों के सिद्धहस्त कलाकारों द्वारा सम्पन्न हुआ है। नगर में लम्बी लम्बी सड़कें हैं जिनका आदि और अन्त बतलाना कठिन है। सड़कों की चौड़ाई कम से कम २४ फीट तथा अधिक से अधिक ४० फीट है। इसके अलावा कई जगह भूमि के अन्दर बनी हुई सड़कें प्राप्त हुई हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस जमाने में अधिकांश जनता सड़कों पर घूमती थी। नगर में बड़े-बड़े मकान हैं जिनमें कबूतर के दरबों की तरह अनेक कमरे बने हुए हैं। हर पचीस कमरों के पीछे एक शौचालय तथा एक स्नानगृह है। कुछ ऐसे भी मकान हैं जिन्हें देखकर राजप्रासादों का आभास होता है, हालाँकि ये सिनेमाघर हैं। सड़कों के अलावा, नगर में छोटी-मोटी गलियाँ भी हैं। हर बडी सड़क पर दो सिनेमाघर तथा एक स्कूल है, जिससे मालूम होता है कि उस जमाने में पढ़ाई-लिखाई सिनेमाघरों में होती थी तथा स्कूल आमोद-प्रमोद के साधन होते थे।

२. होटल तथा नृत्यालय

इस खुदाई में एक विशाल होटल तथा एक नृत्यालय भी प्राप्त हुआ है। होटल में बड़े-बड़े कमरे बने हुए हैं तथा हर कमरे में नहाने से लेकर सोने तक का प्रबन्ध है। नृत्यालय भी होटल के ही अंग होते थे। जिस रंगमंच पर नृत्य होते थे उसकी जमीन इतनी चिकनी होती थी कि उसमें नृत्यांगनाओं की परछाँई दिखाई दे सकती थी। इससे मालूम होता है कि उस जमाने में जमीन पर पालिश करने का व्यवसाय अपनी उन्नत अवस्था में था। होटल तथा नृत्यालय की दीवारें दोहरी हुआ करती थीं। उनका निर्माण कुछ ऐसे ढंग से किया जाता था कि

बाहर की ध्वनि न भीतर जा सकती थी और न भीतर की आवाज बाहर ही आ सकती थी। इसी से मालूम होता है कि उस जमाने में अधिकतर गुप्त-मंत्रणाएँ होटलों में बैठकर की जाती थीं।

३. भवन

इन नगरों के भवनों को चार भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) चाल—साधारण व्यक्तियों के लिए बने हुए विशाल मकानों को 'चाल' कहा करते थे। प्रत्येक 'चाल' में सौ से लेकर दो सौ तक कमरे हुआ करते थे और उनमें हजार से लेकर दो हजार तक आदमी रहा करते थे। प्रत्येक 'चाल' में दस शौचालय तथा दस स्नानगृह हुआ करते थे। शौच जाने के लिए लोग कतार लगाते थे। इससे मालूम होता है कि उस समय के लोग अनुशासन प्रिय थे।

(२) कोठी या हवेली—इसका आकार 'चाल' से छोटा होता था। प्रत्येक कोठी में दो हाल, एक 'बार' (जिस में सुरापान की व्यवस्था होती थी), एक शयन-कक्ष तथा तीन-चार छोटे-छोटे कमरे हुआ करते थे। शयन-कक्ष के साथ एक स्नानगृह भी हुआ करता था जिनमें हौज के आकार के 'टब' हुआ करते थे। स्त्री तथा पुरुष इनमें प्राकृतिक अवस्था में बैठकर स्नान करते थे।

(३) सार्वजनिक भवन—नगर में कम से कम एक सार्वजनिक हाल होता था जिसमें सार्वजनिक जलसे तथा संगीत-समारोह हुआ करते थे।

(४) सिनेमामन्दिर—बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी प्रकार के व्यक्ति सप्ताह में कम से कम एक बार इन मन्दिरों में दर्शन करने के लिए आते थे और नित्य नया ज्ञान प्राप्तकर खुशी-खुशी अपने घर लौट जाते थे।

४. भोजन

लोगों का प्रधान खाद्य चाय तथा बिस्कुट होता था। लोग अधिकतर होटलों में खाना खाते थे। खुदाई में प्यालियों और तश्तरियों के कुछ

टुकड़े प्राप्त हुए हैं जिनसे मालूम होता है कि उस समय के लोग अधिकतर तश्तरियों तथा प्यालियों में क्रमशः खाते-पीते थे। कई स्थानों में लोहे पर पालिश की हुई थालियाँ तथा काँटे-चम्मच प्राप्त हुए हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय भोजन में लोहे (Iron) का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। शायद उस समय के लोग लोहे के चने भी चबाते हों, हालाँ कि इस सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ ऐसे कागज प्राप्त हुए हैं जिनसे मालूम होता है कि उस समय के रईस भोजन के साथ एक ऐसे स्निग्ध पदार्थ का प्रयोग करते थे जो गाय अथवा भैंस नामक जानवर के दूध से तैयार किया जाता था। ये लोग उस पदार्थ को घी कहते थे।

भोजन के साथ ये लोग सब्जियों का भी प्रयोग करते थे। आलू सर्वाधिक प्रिय सब्जी हुआ करती थी और लोग आलू के विविध व्यंजन बना कर खाते थे। एक होटल के अवशेषों में कुछ हड्डियाँ तथा बोतल के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए हैं। उसी प्रकार एक मकान के खँडहर से आलू के छिलके प्राप्त हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है कि लोग सुरा और माँस का भक्षण करने के लिए होटलों में जाते थे तथा घर में आलू की तरकारी खाते थे।

५. वस्त्र

खुदाई से प्राप्त सामग्री में कुछ ऐसे कल-कारखानों के पुरजे प्राप्त हुए हैं, जिनसे मालूम होता है कि यहाँ के लोग कपड़ा पहिनते थे। पुरुषों के मुकाबले स्त्रियाँ बहुत कम कपड़ा पहिनती थीं। स्त्रियों और पुरुषों के पहनावे में विशेष अन्तर नहीं होता था। स्त्रियाँ एक ऐसे वस्त्र का उपयोग करती थी, जो बिलकुल पारदर्शक होता था। इससे ज्ञात होता है कि उस समय की स्त्रियाँ सौन्दर्य तथा सुरुचि के प्रदर्शन के मामले में पाश्चात्य स्त्रियों से किसी भी दृष्टि में कम नहीं थीं।

६. आभूषण

खुदाई में अनेक प्रकार के आभूषण प्राप्त हुए हैं जिनसे मालूम होता है कि लोग सुवर्ण के शौकीन होते थे। कुछ हलकी किस्म के जेवर भी प्राप्त हुए हैं जिनसे मालूम होता है कि उस समय की स्त्रियाँ नाजुक होती थीं तथा कान की हलकी हुआ करती थीं। काफी गहरी खुदाई में लोहे की बड़ी-बड़ी सन्दूकों में बन्द की हुई सोने की सिल्लियाँ प्राप्त हुई हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय सोना सिल्लियों के रूप में जमीन से निकाला जाता था।

७. श्रृंगार

शांति-घाटी के लोग श्रृंगार करने के मामले में काफी बढ़े-चढ़े थे। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही श्रृंगार में समान रूप से भाग लेते थे। श्रृंगार के उपादानों में डेपिल, स्नो, व्हेसलिन तथा लिपस्टिक प्रमुख हुआ करते थे। ऊँची सोसाइटी की कुछ महिलाएँ अपने सिर के बाल तथा भौंहें बनाती थीं। ओठों को रंगने के लिए वे लिपस्टिक का प्रयोग करती थीं। स्त्रियों को एक समय के श्रृंगार में कम से कम तीन घंटे का समय लगता था। श्रृंगार के लिए वे 'मेक-अप्' शब्द का प्रयोग करती थीं। श्रृंगार के मामले में वे इतनी दक्ष होती थीं कि यदि विधाता भी अपनी उस 'मेक-अप्' युक्त कलाकृति को देख लेता तो अपने दाँतों तले उँगली दबा लेता। (विधाता के दाँतों तले दबी हुई एक उँगली के अवशेष यहाँ की राष्ट्रीय म्यूजियम में सुरक्षित है।)

युवतियाँ दिन में कम-से-कम तीन बार 'मेक-अप्' किया करती थीं।

८. आमोद-प्रमोद

खुदाई के सिलसिले में कुछ ऐसे प्रमाण प्राप्त हुए हैं, जिनसे मालूम होता है कि उस समय के लोगों का आमोद-प्रमोद का प्रमुख साधन सिनेमा और रेडियो था। उस समय की पूरी संस्कृति ही सिनेमा से

प्रभावित मालूम होती है। पढ़े-लिखे लोग समाचार-पत्र पढ़कर तथा राजनीतिक गप-शप में भाग लेकर आमोद-प्रमोद कर लेते थे। साहित्यिक प्रवृत्ति के लोग हास्य-व्यंग की रचनाएँ पढ़कर अपना मनोरंजन कर लेते थे। कवि लोग परस्पर पहेलियाँ बुझाकर एक दूसरे का कौतुक कर लेते थे। इन पहेलियों को वे 'नयी कविता' के नाम से पुकारते थे। धनी लोग सामूहिक रूप से संगीत और नृत्य का आस्वादन लेते थे। संगीत-परिषदों में भाग लेना ऊँची सोसाइटी और रिफाइन्ड-कल्चर का लक्षण माना जाता था। संगीत-परिषदों में भाग लेने वाले अधिकतर रईस संगीत से नावाकिफ हुआ करते थे। वे अधिकतर सोया करते थे और स्त्रियाँ स्वेटर बुना करती थीं।

आर्थिक दशा

१. प्रमुख व्यवसाय

खुदाई में प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि शांति-घाटी के निवासियों का प्रमुख व्यवसाय खेती था। करीब ८० प्रतिशत जनता गाँवों में रहती थी। जब उन्हें खेती से फुरसत मिलती थी तो वे शहरों की ओर चले आते थे और मेहनत-मजदूरी करके या फैक्टरियों में काम करके अपना पेट पालते थे। शहरों में रहने वाले अधिकतर पढ़े-लिखे लोग स्कूल या कालेजों में प्रोफेसर बन जाते थे। कम पढ़े-लिखे लोग दफ्तरों में क्लर्की करते थे। नौकरी प्राप्त करने में योग्यता की अपेक्षा 'मेल-जोल' का अधिक ध्यान रखा जाता था। इससे प्रकट होता है कि उस समय के लोग सामाजिक थे।

जो न विशेष पढ़े-लिखे ही थे और न स्थायी रूप से शहर या देहात में ही रहते थे, उनका प्रधान व्यवसाय नेतागिरी था। देश में अनेक राजनीतिक पार्टियाँ थीं और प्रत्येक पार्टी का अलग-अलग चन्दा होता था। इनका प्रमुख कार्य हड़ताल करवाना, अनशन करना तथा प्रदर्शन करना होता था। किसी विशेष प्रकार की योग्यता का न होना

इनका प्रमुख गुण माना जाता था। अपने व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए ये लोग हर पाँचवें साल 'चुनाव' लड़ते थे।

२. पशु-पालन

यहाँ के लोगों का एक अन्य व्यवसाय पशु-पालन था। कुछ लोग गायें या भैंसे पालकर उनका दूध निकालते थे। खुदाई में एक ऐसा यन्त्र प्राप्त हुआ है जो दूध में पानी की मात्रा नापने के काम आता था। इससे प्रकट होता है कि उस समय के लोग गाय या भैंस का निखालिस दूध हजम नहीं कर पाते थे। कुछ लोग मुर्गियाँ पालते थे और उनके अण्डे बेचकर अपने अण्डों-बच्चों की परवरिश करते थे।

पशुपालन केवल व्यवसाय का ही साधन नहीं था बल्कि कुछ लोग शौक के लिए भी पशु पालते थे। कबूतर तथा तीतर पालने का शौक धीरे-धीरे कम हो रहा था और उनका स्थान बकरी तथा कुत्तों ने ले रखा था। गरीब लोग बकरी पालते थे तथा धनी लोग कुत्तों की रखवाली करते थे। एक प्रसिद्ध इतिहासकार का कथन है कि इस युग में कुत्तों की जितनी अच्छी नस्ल तैयार हुई उतनी और कभी नहीं हुई थी।

गधे को भी काफी महत्त्व प्राप्त हो गया था। कई लेखकों ने गधे पर अपनी प्रतिभा खर्च कर राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये थे। सिनेमा में गधों का होना सभ्यता का लक्षण माना जाता था।

३. विदेश-व्यापार

बीसवीं शताब्दी के अन्त में भारत का विदेशों से व्यापार-सम्बन्ध काफी बढ़ गया था। इस सम्बन्ध को और भी अधिक दृढ़ करने के लिए विदेश के व्यापारियों को काफी सुविधाएँ दी जाती थीं। यहाँ से विदेशों को मैंगनीज जैसे खनिज पदार्थ भेजे जाते थे और उनके बदले में विदेशों से नायलोन जैसी बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त की जाती थीं। इससे ज्ञात होता है कि उस समय भारत की आर्थिक दशा अत्यन्त सुदृढ़ थी और वह अन्य देशों को भी अपनी ही तरह उन्नत देखना चाहता था।

४. अन्य-उद्योग

शान्ति-घाटी की सरकार विदेशों से काफी मशीनें तथा अन्य सामान खरीदती थी, हालाँ कि उसी शक्ल और सूरत का सामान यहाँ के कारीगर घर बैठे बना लेते थे। कई ऐसे यन्त्र मिले हैं जिन्हें देखकर मालूम होता है कि वे शान्ति-घाटी में बने हुए हैं, लेकिन इन पर विदेशों की मुहर लगी हुई है। इससें ज्ञात होता है कि यहाँ के कारीगर विदेशों के सामानों के समकक्ष सामान बना सकते थे और उन पर विदेशों की मुहर भी लगा सकते थे, किन्तु उन्हें सरकार की ओर से वैसा करने की सुविधा नहीं थी।

अन्य उद्योगों में सबसे महत्वपूर्ण उद्योग था, 'मिलावट' का। यहाँ के व्यापारी किसी भी वस्तु की इतनी सही नकल उतार लेते थे कि वह वस्तु असली से भी अधिक सजीव मालूम होती थी। दूध में मिलावट होती थी, घी में मिलावट हो सकती थी, रंग में मिलावट तो होती ही थी। इससे ज्ञात होता है कि शांति-घाटी के लोग मौलिक सूझ-बूझ के होते थे। मिलावट के व्यापार से कितने ही महकमों को काम मिल जाता था। डाक्टर, पुलिस-विभाग तथा भ्रष्टाचार-निर्मूलन विभाग 'मिलावट' का ही मुँह देखते थे। सन् १९६३ के प्रारम्भ में सरकार ने भी इस व्यवसाय को मान्यता दे दी थी और घोषित किया था कि सोने का कोई भी गहना बगैर मिलावट के नहीं बनाया जा सकता।

५. कला कौशल

शान्ति-घाटी के लोग कुशल कलाकार थे। साहित्य, संगीत तथा चित्रकला इन तीनों कलाओं में उनकी अबाध गति थी। साहित्य, संगीत तथा चित्रकला का जितना अच्छा समन्वय इस युग में हुआ था, उतना और कभी नहीं हुआ। इसी युग में 'आधुनिक कला' अर्थात् 'मार्डन आर्ट' का प्रादुर्भाव हुआ। खुदाई में लोहे का एक बक्स प्राप्त हुआ है जिसमें एक कागज पर बनी हुई अनोखी तसवीर

है तथा साथ में करीब एक हजार पृष्ठ का एक लेख है जिसमें उस चित्र के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण दिया गया है। इससे मालूम होता है कि उस समय चित्रकला का काफी विकास हो चुका था और वगैर विवरण दिये चित्रों को समझना कठिन कार्य था।

चित्रकला के मुकाबले में संगीत को समझ लेना आसान था। संगीत की तीन श्रेणियाँ की गयी थीं—

(१) शास्त्रीय संगीत, (२) फिल्मी संगीत, (३) सुगम संगीत। प्रायः एक श्रेणी के संगीत को पसंद करने वाले, दूसरे श्रेणी के संगीत की तीव्र आलोचना करते थे।

साहित्य दो प्रकार का होता था—(१) मौलिक, (२) आलोचनात्मक। अकसर यह होता था कि कोई मौलिक रचना लिखी जाती थी और वर्षों तक उस रचना के सम्बन्ध में आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। औसतन, एक मौलिक रचना के पीछे १०० आलोचनात्मक रचनाओं का निर्माण होता था। कभी-कभी आलोचनात्मक ग्रंथ पहले प्रकाशित होते थे और बाद में मौलिक रचनाओं का प्रकाशन होता था।

इससे मालूम होता है कि उस समय के लोग किसी भी वस्तु के हर पहलू पर विचार करने में समर्थ थे।

युद्ध-नीति

शांति घाटी की खुदाई में प्राप्त सामग्री में एक ऐसे युद्ध का वर्णन मिलता है, जिसे शीत-युद्ध कहा जाता था। इस युद्ध का ढंग बड़ा अनोखा होता था। प्रायः सभी देशों को इस युद्ध में भाग लेना पड़ता था। पहले किन्हीं दो छोटे-देशों में लड़ाई शुरू हो जाती थी और फिर अन्य बड़े राष्ट्र दोनों दलों की ओर से एक दूसरे को धमकी भरे पत्र भेजते थे। असली लड़ाई एक या दो ही दिन में समाप्त हो जाती

थी किन्तु उसका फैसला बड़े लोग बड़ी-बड़ी मेजों के इर्द-गिर्द बैठ कर किया करते थे।—'शीत-युद्ध' इस नाम से प्रकट होता है कि यह युद्ध शीतकाल में होता था।

धार्मिक-दशा

अन्य बातों के अलावा, उस समय धर्म का भी काफी प्रचार-प्रसार था। हिन्दुओं के देवी-देवताओं पर चलचित्र बनाये जाते थे, जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, सभी धर्मों के लोग बड़े चाव से देखते थे। इन चित्रों में नाच और गाने भी होते थे। इससे मालूम होता है कि उस जमाने में धर्म-सम्बन्धी बातों की भी गहरी खोज-बीन हुई थी।

खुदाई में प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि बीसवीं शताब्दी में शान्ति-घाटी में स्थापत्य-कला, पुल-निर्माण तथा बाँध बनाने के कार्यों में रिसर्च किये गये। इतना ही नहीं, बल्कि स्कूल-कालेजों के विद्यार्थी कहीं पढ़ाई से ऊब न जाएँ इसलिए हर पाँचवे साल शिक्षा-पद्धति में रिसर्च किये गये।

अपनी सहिष्णुता तथा प्रेमभाव के कारण शान्ति-घाटी के लोगों का विदेशियों से स्नेह-सम्पर्क काफी बढ़ गया था और दोनों एक दूसरे की सहायता करते थे। ऐसे ठोस प्रमाण प्राप्त हुए हैं, जिनसे मालूम होता है कि विदेश के लोग शान्ति-घाटी में होने वाले चुनावों में भी काफी दिलचस्पी लेते थे और तन-मन तथा धन से उनकी सहायता करते थे।

शान्ति-घाटी की खुदाई में प्राप्त सामग्री से मिला हुआ ज्ञान अभी अपर्याप्त है। इस सम्बन्ध में अभी खोज-बीन जारी है। विशेष जानकारी अधिक अध्ययन के बाद ही हो सकेगी।

खत चूहे का प्रधान मंत्री के नाम

प्रधान मन्त्री अपने दफ्तर के प्राइवेट कमरे में बैठ कर एक आवश्यक फाइल का अध्ययन कर रहे थे। इधर महीने भर से उन्हें रात-दिन काम करना पड़ा था और इस कारण उनके चेहरे पर एक अजीब-सी परेशानी, एक अजीब-सी थकान फैल गयी थी। उन्हें देखने से लगता था जैसे वे सोच रहे हों कि यह फाइल देख लूँ तो कुछ देर तक आराम करूँ। चन्द मिनट पहले उनके विदेशी मामलों के सलाहकार ने चीन की समस्या से सम्बन्धित एक फाइल उनके सामने रख दी थी, जिस पर शीघ्र ही निर्णय लेना जरूरी था। शायद, निर्णय लेते समय उन्हें अपने आज तक के विचारों में एक नया मोड़ देना पड़े या सम्भव है कि अपने आज तक के उसूलों का खून करना पड़े। उनके चेहरे पर एक अजीब-सा संघर्ष नाच रहा था। अपने चारों ओर के वातावरण से वे दूर जा चुके थे और एक ऐसे शून्य में जा पहुँचे थे जहाँ उनके सामने केवल एक प्रश्नचिह्न था। इस स्थिति में वे मुश्किल से पाँच मिनट ही रह पाये होंगे कि इतने में एक चूहा जाने कहाँ से आ पहुँचा और उनकी जाँघ पर बैठ गया। चूहे की मूँछें गड़ने से प्रधान मन्त्री का ध्यान टूटा। क्षण भर के लिए उनकी त्योरियाँ चढ़ गयीं, गुस्सा आ गया। एक छोटे से चूहे की इतनी हिमाकत ? किसकी इजाजत से यह चूहा यहाँ चला आया ? किसकी आज्ञा से ? सेक्रेटरी ?

लेकिन यह सब केवल क्षण भर के लिए। दूसरे ही क्षण उनके चेहरे पर ताजे गुलाब की मुस्कान बिखर गयी। 'स्वतंत्र भारत का एक जीव मुझसे मिलने के लिए आया है,' उन्होंने सोचा और उनकी मुस्कान और भी गहरी हो उठी। चूहे ने प्रसन्न मुद्रा से प्रधान मन्त्री की ओर देखा। सेक्रेटरिएट टेबुल पर रखे हुए टेबुल लैम्प की नीली रोशनी में उसकी छोटी किन्तु पैनी आँखें चमक उठीं। वह झट प्रधान मन्त्री की जाँघ पर से कूद कर एक बिल में घुस गया और फिर दूसरे ही सेकण्ड वापस भी चला आया। प्रधान मन्त्री की उत्सुकता अब और भी अधिक बढ़ गयी क्योंकि उन्होंने देखा कि इस बार चूहा अकेला नहीं है बल्कि उसके साथ एक बड़ा-सा लिफाफा भी है। प्रधान मन्त्री की मेज पर वह लिफाफा रख देने के बाद, चूहा एक ओर खड़ा हो गया और उनकी ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगा। प्रधान मन्त्री के चेहरे पर की मुस्कुराहट और भी घनी हो उठी। 'तो ये राजदूत हैं! लेकिन कहाँ के?' उन्होंने सोचा और आहिस्ते से लिफाफे का एक कोना फाड़ कर उसमें से एक पत्र निकाला। पत्र काफी लम्बा था और कई पृष्ठों में था। इतने अधिक पृष्ठ देखकर उनके ललाट पर परेशानी की एक हल्की सी लकीर उभर आयी। उन्होंने अपनी कलाई घड़ी में देखा और फिर सामने खड़े चूहे की ओर देखा। मूशक महोदय बड़ी ही उत्कंठा से प्रधान मन्त्री की ओर देख रहे थे।

प्रधान मन्त्री ने पत्र उठाया और पढ़ने लगे—

"आदरणीय प्रधान मन्त्री जी,

सादर अभिवादन,

"सुना है, आप दीन-दुखियों के रहनुमा हैं, अल्पसंख्यकों के परवरदिगार हैं, आपका बड़ा नाम है, शोहरत है। यही सब सोचकर मैं अपने एक खरब मूशकों के विशाल गणतन्त्र की ओर से आपके सामने चन्द बातें पेश करने की हिमाकत कर रहा हूँ। आशा है, आप समय

निकालकर उन पर गौर करने का कष्ट करेंगे और हमें अपना निर्णय सूचित करने की कृपा करेंगे।

"सबसे पहले मैं यह बताऊँ कि हम कौन हैं। आपके गणतन्त्र के कुछ लोग हमें 'चूहा' कहकर अत्यन्त हेय समझते हैं और तिरस्कार करते हैं। शायद, आपको मेरी बात पर यकीन न आए, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हम मराठों की सन्तान हैं। उन मराठों की जिन्होंने कभी अपनी वीरता का डंका समस्त भारत में बजा दिया था। उनकी बहादुरी को ठीक तौर से जाँचने-परखने के बाद ही अंग्रेज इतिहासकारों ने उन्हें 'पहाड़ी-चूहा' उपनाम से अलंकृत किया था। यह उनकी सरासर गलती थी कि उन्होंने मराठों की लड़ाई को 'चूहा-वार' न कहकर 'गुरिल्ला वार' कहा, हालाँ कि गुरिल्ला को लड़ाई करना नहीं आता। अपनी वीरता का बखान कर हम मराठों के इतिहास को दुहराना नहीं चाहते, क्योंकि हम जानते हैं कि आप इतिहास के पण्डित हैं, इतिहास की एक खुली हुई किताब हैं।

"अगर केवल इतना ही होता कि हमारी वीरता का उचित आदर न कर, हमें केवल एक मामूली चूहे की जिन्दगी बसर करने की सुविधा मिली होती तो भी कोई बात थी। लेकिन आपके यहाँ के अखबारों ने हमारे सम्बन्ध में गलत-सलत एवं अपमानजनक समाचार प्रकाशित कर हमारी परम्परागत प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाई है, हमारे आत्म-सम्मान को इससे गहरा धक्का लगा है और हम अपने आपको अत्यन्त क्षुद्र, अनाथ एवं अपाहिज महसूस कर रहे हैं। हम जानते हैं कि आप हमारी बात को यूँ ही नहीं मान लेंगे। सो लीजिए, सबूत हाजिर है। पढ़िए—

बाढ़ के लिए चूहे जिम्मेदार!

('ब्लिट्स' संवाददाता से)

'मुजफ्फरपुर—यह शहर तथा इसके आसपास के उत्तरी बिहार के शेष इलाके भनायक बाढ़ के शिकार हो गये हैं, फलतः पाँच हजार

गाँव डूब गये हैं और लगभग पचास लाख व्यक्ति बेघर हो गये हैं। पूरा क्षेत्र पानी की लपेट में आ गया है।

'यह भीषण बाढ़, यह गरीबी, इन सबका कारण बाँध में हुई दरारें हैं, जिनके लिए सरकार ने चूहों को जिम्मेदार ठहराया है।'

"प्रधान मन्त्री जी! हम अच्छी तरह जानते हैं कि ये विचार आपके विचार नहीं हैं। आपकाहृदय इतना छोटा कभी नहीं हो सकता। लेकिन इतना अवश्य है कि आपकी सरकार में कुछ लोग हम गरीब चूहों पर इल्जाम लगाकर आपकी आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं। हम अपनी यह गलती महसूस करते हैं कि हमने पुल के खम्भे में छेद किये। लेकिन क्या उससे बड़े छेद उन इंजीनियरों ने अपने देश की समस्त जनता के विश्वास में नहीं किये हैं, जिन्होंने कम खाकर भी अपने देश की प्रगति के लिए अपनी आमदनी का हिस्सा दिया?

आप मुझे कम्युनिस्ट कहेंगे। आपका ऐसा सोचना सही है, क्योंकि पिछले दिनों मैं रूस में था और वहाँ के वातावरण ने मुझे कम्युनिस्ट बना दिया। लगे हाथ, मैं आपको यह बताऊँ कि अपनी रूसयात्रा के दौरान में मैंने मार्क्स के कैपिटल का मूल संस्करण भी चाट डाला और मैंने पाया कि मार्क्स के विचार और आपके विचार काफी हद तक मिलते-जुलते हैं। मैं स्वयं आपके विचारों का समर्थक हूँ, किन्तु हमारे यहाँ के कुछ चूहों की शिकायत है कि आप चीन तथा अन्य पड़ोसी राष्ट्रों के अतिक्रमण को तो आसानी से सह लेते हैं किन्तु हमारी जनता के कुछ लोगों द्वारा की गयी भूमिगत कारवाइयों की तीव्र निन्दा करते हैं निजी तौर पर मैं स्वयं इस प्रकार की भूमिगत कारवाई के पक्ष में नहीं हूँ लेकिन आप तो जानते ही हैं कि जनतन्त्रात्मक राज्य-प्रणाली में इस प्रकार के मतभेद एक साधारण-सी बात होती है। मिसाल के तौर पर, अब मैं अपने ही यहाँ के कुछ किस्से सुनाता हूँ। इधर हमारे शासन में चूहों के दो दल हो गये हैं। एक उत्तरी भारत में रहने वाले चूहों का दल है दो दूसरा दक्षिणी भारत में रहने वालों का। आम तौर पर, लोग यही

समझते हैं कि चूहे की बस एक ही किस्म होती है। किन्तु जिन्होंने उत्तर हिन्दुस्तान और दक्षिण हिन्दुस्तान के चूहों का रङ्ग, उनकी संस्कृति, उनकी मूँछों के कट का अध्ययन किया है वे जानते हैं कि दोनों क्षेत्रों के चूहों में एक साफ अन्तर है। कुछ चूहों ने तो "स्वतन्त्र चूहास्तान" की माँग की है। उनका कहना है कि हिन्दुस्तान के तमाम नागरिकों को हटाकर उस पर अपना अधिकार कर लिया जाए और "स्वतन्त्र चूहास्तान" की घोषणा कर दी जाए।

"खैर! ये तो हमारे आपसी झगड़े हैं जो हमें खुद ही हल करने हैं। किन्तु यदि इस कार्य में आपकी जनता का सहयोग हमें मिल जाए तो हम इन झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढङ्ग से हल करने का प्रयत्न करेंगे ताकि हम दोनों में परस्पर सद्भावना बनी रहे और स्नेह का वातावरण कायम रहे।

"खुशी की बात है कि आपके देश में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो हम लोगों के प्रति सहानुभूति रखते हैं। ऐसे ही कुछ लोगों के पत्र हमें प्राप्त हुए हैं, जिन्हें मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ।

'बहन कुन्ती!

'सुखी रहो। तुमने मूस पकड़ने के लिए चूहादानी की माँग की थी। मैंने इधर बहुत खोजा लेकिन कहीं भी चूहादानी नहीं मिली। सुना, तुम्हारे घर पिछले महीने चोरी हो गयी थी। क्या चोर परिचित थे या तुम लोग ही घोड़ा बेचकर सो जाते हो? अरे भई, थोड़ा-बहुत होश रखकर सोया करो। अरे हाँ! खूब याद आया। पिछले सप्ताह हमारे पड़ोसी के यहाँ भी चोर घुस आये थे, लेकिन ऐन वक्त पड़ोसी महोदय की नींद खुल गयी और चोर भाग गये। जानती हो, कैसे? चूहों की वजह से। अरी, हँसती क्यों हो? मैं सच कह रही हूँ। पड़ोसी महोदय लम्बे खुर्राटे भर रहे थे और उधर चोर सारा माल-असबाब उठाकर भागने की तैयारी में थे कि इतने में एक बड़ा भारी चूहा बिजली की तार की केसिंग पर से सरपट भागता हुआ स्विचबोर्ड

तक पहुँच गया। जानती हो, उसका वजन इतना अधिक था कि उससे स्विच ऑन हो गया, कमरे की बत्ती जल गयी और इससे पहले कि पड़ोसी महोदय आँख खोलकर देखते कि क्या हुआ है, चोर महोदय भाग गये।

तो मेरा ख्याल है, चूहादानी का ख्याल अब छोड़ ही दो।

और सब ठीक है। बच्चे तुम्हारी बहुत याद करते हैं। मेरी ओर से बच्चों को प्यार और तुम्हारे पति को नमस्ते।

चिट्ठी का जवाब जरूर देना। तुम्हारी सहेली—

सीता

दूसरा पत्र मेहमानों के सम्बन्ध में है। सुना है कि आपके यहाँ मेहमानों की बड़ी समस्या है। यह समस्या हम चूहों ने किस प्रकार हल की है इस बात पर रोशनी डालने वाला यह-पत्र बनारस के एक क्लर्क ने पटना स्थित अपने एक मित्र को लिखा है—

भाई हरिदयाल,

नमस्ते!

बहुत दिन हुए, तुमने अपना कोई समाचार नहीं भेजा। लेकिन इसमें तुम्हें क्यों दोष दूँ? मैंने भी तुम्हें कहाँ कोई चिट्ठी लिखी है? खैर!

इधर खबर यह है कि बहुत दिनों से मेहमानों से परेशान रहा। तुम्हारी भाभी मेहमान-नवाजी करते-करते थक गयी और मैं खर्च के बोझ से कंगाल हो गया। सोचा था इस साल कहीं घूमने जाऊँगा लेकिन मेहमानों ने सारा बजट ही फेल कर दिया।

अरे हाँ! मेहमानों के चले जाने का समाचार तो लिखा ही नहीं। सुनोगे तो हँसोगे! बड़ी दिल्लगी रही। जानते हो, हमारे यहाँ के चूहे इतने जबर्दस्त हैं कि अब आदमी भी उनका लोहा मानने लगे हैं। उस रात क्या हुआ? सब मेहमान सोये हुए थे। इतने में एक

चूहा आया और उसने मेहमान महोदय के सुपुत्र का कान काट लिया। बस दूसरे ही दिन मेहमान देवता नौ-दो ग्यारह हो गये।

चूहों द्वारा कान काटे जाने पर क्या इलाज होता है यह तो मालूम नहीं हो सका, किन्तु मेहमानों को टरकाने का एक अक्सीर नुस्खा हाथ लग गया।

और सब ठीक है। सुना कि तुम्हारे यहाँ ग्रेड रिविजन हो रहा है। कहो, तुम्हें कितने लाभ की सम्भावना है?

यहाँ तो वही हालत है जो पहले थी। नया कुछ भी नहीं।

तुम्हारा दोस्त—
विशनलाल

तीसरा पत्र दरअसल पत्र न होकर, पब्लिक सर्विस कमीशन की परीक्षा में बैठे हुए एक विद्यार्थी के लिखे एक प्रश्न का उत्तर है, जिसमें उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बाजार भाव को स्थिर रखने में हमारा (अर्थात् चूहों का) बड़ा योगदान रहता है। विद्यार्थी के ही शब्दों में पढ़िए—

'अमेरिका जैसे समृद्ध देश में, जहाँ अनाज का उत्पादन आवश्यकता से बहुत अधिक मात्रा में होता है, काफी अनाज समुद्र में डुबो दिया जाता है ताकि अनाज का भाव एक निश्चित सतह से नीचे गिरने न पाये।

हमारे देश में यही कार्य चूहों द्वारा सम्पन्न होता है। यदि चूहे न हों तो अनाज का भाव काफी गिर जाए और पूँजीपति भूखों मरने लगें। इस दृष्टि से, चूहे पूँजीपतियों के दलाल हैं।

लेकिन, प्रधान मन्त्री जी! आपके ही देश में, जहाँ हमारे प्रति सहानुभूति रखने वाले कुछ लोग हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो हमें गन्दा समझते हैं और हमें नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग जहर की गोलियाँ खिला-खिला कर हमें मार डालने का प्रयत्न करते हैं। (शुक्र है उन दवासाजों का जो नकली जहर की गोलियाँ बेचकर हमारी जान बख्श देते हैं!) उनका कहना है हमारे शरीर में जरासीन हैं। इस

सम्बन्ध में हम एक खुलासा करना चाहते हैं। इधर हमने सफाई अभियान शुरू किया है, जिसके अन्तर्गत हम आपके घरों में से लाइफ-बॉय साबुन की टिकिया चुरा लेते हैं और उसे खाकर अपनी आत्मशुद्धि कर लेते हैं। हमारे यहाँ के रिसर्च विभाग के एक अधिकारी ने बतलाया है कि लाइफबॉय साबुन जरासीनों को नष्ट कर देता है और शरीर को साफ एवं सुथरा बना देता है और इसीलिए हम लाइफबॉय साबुन की टिकिया ही चट कर जाते हैं। हमारे शरीर और मन की शुद्धता का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है ? कुछ लोगों का ख्याल है कि हम निहत्थे हैं और किसी का कुछ बना या बिगाड़ नहीं सकते। लेकिन वे यह नहीं जानते कि हमारे दाँत किसी तेज आरी से कम नहीं हैं।

अपनी तारीफ में हम और क्या लिखें ? आपने तो वह किस्सा अवश्य ही सुना होगा कि एक चूहा पहले शेर बनने की कामना करता था किन्तु अन्त में चूहा ही बने रहने पर राजी हो गया।

मैं कोई चूहा पुराण सुनाना नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप यू० एन० ओ० में हमारी वकालत करें। क्योंकि हम यू० एन० ओ० के सदस्य नहीं हैं। हमारी केवल यही प्रार्थना है कि हमें इज्जत के साथ रहने की सुविधा दी जाए, हमें मनुष्य का मित्र समझा जाए, हमें बराबर का दर्जा दिया जाए, बिल्लियों और जहर की (असली) गोलियों से हमारी रक्षा की जाए। हम अकेले नहीं हैं बल्कि हमारे पीछे एक खरब चूहों की विशाल प्रजा है जो सकट के हर समय में आपकी और हिन्दुस्तान की रक्षा कर सकती है। जो बाँध में छेद कर सकते हैं वे बहुत बड़ी दीवार में छेद करना भी जानते हैं। बशर्ते उन्हें मौका दिया जाए।

हम इस मौके की ताक में हैं। आपका संकेत पाते ही हम दुश्मन पर टूट पड़ेंगे और उसे खदेड़ देंगे। आपने अल्पसंख्यकों की बड़ी सहायता की है। इस बार हम बहुसंख्यकों का भी कुछ भला करें और हमें आपका आभार प्रदर्शन का मौका दें।

आशा है, पत्र का उत्तर देने की कृपा करेंगे।

नोट—पत्र पोस्टआफिस के जरिए न भेज कर अपने दफ्तर की मेज पर ही रख दें। हमारा पत्रवाहक स्वयं आकर उसे ले जाएगा।"

प्रधान मन्त्री ने पत्र पढ़ने के बाद एक लम्बी साँस ली। सहसा उनके चेहरे पर आश्चर्य की एक लकीर खिंच गयी। पत्र के नीचे किसी की दस्तखत नहीं थी। अलवत्ता, उसपर किसी चूहे के नाखूनों के निशान थे।

प्रधान मन्त्री की पेशानी पर वल पड़ गये। किन्तु थोड़ी ही देर में उनके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उन्होंने घंटी बजायी और अपने सेक्रेटरी को बुलाकर आज्ञा देने के ढंग पर कहा, 'इसे फॉरेन डिपार्टमेन्ट के दफ्तर में ले जाओ और फौरन जवाब लिखवा लाओ। और देखो, शहर में ऐलान करा दो कि चूहे हमारे पड़ोसी हैं, अतः उनके साथ आदमियों का सा व्यवहार किया जाए।'



नेता बनने चला

रामलुभाया, वल्द दीनदयाल, उम्र ३० वर्ष, बी० ए० की परीक्षा में तीसरी बार फेल होने के कारण जीवन से निराश होकर खुदकुशी करने की सोच ही रहा था कि नदी के किनारे उसकी मुलाकात एक तपेतपाये नेताजी से हुई। नेताजी की आँखों से वात्सल्य तथा दाढ़ी से गम्भीरता टपक रही थी। रामलुभाया को मृत्यु के मुख से बचाने के बाद नेताजी ने उससे पहली बार पूछा, "जीवन से निराश हो गये हो, बरखुरदार?"

"इसके अलावा और उपाय ही क्या है, गुरुजी? बी० ए० की परीक्षा में तीसरी बार फेल होने के बाद अब क्या मुँह लेकर घर जाऊँ? अपनी मनहूस सूरत किसे दिखलाऊँ?"—रामलुभाया ने फफकते हुए उत्तर दिया।

"धीरज रखो, बेटा!" नेताजी ने सान्त्वना देने के स्वर में कहा, "मेरी ओर देखो। मेरा सारा जीवन असफलताओं की सफल कहानी है। असफलताएँ जब अपनी चरमसीमा पर पहुँचती हैं, तो उसमें से ही सफलता की कोई राह निकल आती है।"

रामलुभाया का चेहरा पोछी हुई स्लेट के समान साफ था। उसने निर्विकार मुद्रा में कहा, "मैं समझा नहीं, गुरुजी! जरा साफ-साफ कहिये।"

"हूँ!" नेताजी ने हँसकर कहा, "समझ भी कैसे सकते हो, बेटा? तुम्हारा बदन अभी काँप रहा है। तुम भूखे हो। पहले घर चलो, फिर बातें होंगी। हाँ-हाँ, मेरे ही घर!"

खा-पीकर प्रकृतिस्थ होने के बाद रामलुभाया के चेहरे पर स्वाभाविक स्मार्टनेस लौट आयी। नेताजी के शब्दों और सान्निध्य से उसे आत्मबल प्राप्त हुआ। शिष्य को उत्साह से सराबोर पाकर नेताजी ने पूछा, "तो तुम राजनीतिक क्षेत्र में कूदने के लिए तैयार हो?"

"हाँ, गुरुजी!" रामलुभाया ने स्वाभाविक विनय से कहा, "देश के लिए यह क्षुद्र जीवन यदि कुर्बान भी करना पड़े, तो भी कम है।"

"देश की सेवा करने का एक ही तरीका है। पहले किसी पार्टी के सदस्य बन जाओ।"—नेताजी ने कहा।

"किस पार्टी का सदस्य बनना ठीक होगा?"

"वैसे तो सभी पार्टियाँ एक जैसी हैं। सिर्फ नाम का अन्तर है। अलबत्ता, सरकारी पार्टी का नेता बनने से इसी लोक में स्वर्ग का आनन्द प्राप्त हो सकता है।" नेताजी ने अपने अनुभव-सम्पन्न जीवन का एक पृष्ठ फाड़ते हुए कहा।

"तब तो मैं सरकारी पार्टी का ही नेता बनना अधिक पसन्द करूँगा।"—रामलुभाया की आँखों में स्वर्ग-सुख की लालसा तैरने लगी थी।

अभी से फल की आशा न करो, बरखुरदार!"—नेताजी ने रामलुभाया को स्वर्ग से धरती पर लाते हुए कहा, "सरकारी पार्टी में भी कई पार्टियाँ हैं और उन सभी पार्टियों के नेता मन्त्री बनने की ताक में हैं। पहले उनका नम्बर आ जाये, तब कहीं तुम्हारी बारी आयेगी।"

"तो फिर, देश-सेवा की मेरी अभिलाषा अधूरी ही रह जाएगी?"—रामलुभाया ने खिन्न स्वर में कहा।

"नहीं-नहीं। ऐसी बात नहीं है। राजनीति, ग्रहों का सबसे अच्छा अखाड़ा है। यहाँ कब क्या होगा, इसका पता खुद ईश्वर को भी नहीं होता, फिर हमलोगों की क्या हस्ती?"—नेताजी ने रामलुभाया को सान्त्वना की लम्बी खूराक पिलाकर कहा, "सरकारी पार्टी की ओर से एक बार चुनाव लड़ने का मौका मिल जाये और एक बार तुम जीत जाओ, तो बस तुम्हारा कल्याण ही कल्याण है। बाद के चुनाव में तुम अपने आप ही जीतते जाओगे और मन्त्रीपद तुम्हारे कदम चूमेगा।"

"मंत्रीपद ?"—रामलुभाया ने संदिग्ध स्वर में कहा।

"और नहीं तो क्या ?"—नेताजी ने आश्वासन देने के स्वर में कहा, "राजनीति के क्षेत्र में बी० ए० फेल व्यक्ति हैं ही कितने ? इतनी बड़ी योग्यता पर तुम शिक्षामन्त्री सहज ही बन सकते हो। लेकिन तुम यह पद कभी भी स्वीकार न करना।"

"क्यों, गुरुजी ? शिक्षामन्त्री का पद स्वीकार करने में कौन-सी कठिनाई है ?" रामलुभाया को गुरुजी का बात-बात में शंका प्रकट करना अच्छा नहीं लग रहा था।

"बात यह है कि अपने देश में विभिन्न जातियों तथा विभिन्न सम्प्रदाय के लोग पढ़ते हैं। एक सम्प्रदाय को खुश रखना चाहोगे तो दूसरा नाराज हो उठेगा और उसे राजी करोगे, तब तक इस्तीफा देने की नौबत आ जायेगी।" नेताजी ने शिक्षामन्त्री के पद के काँटों को गिनाते हुए कहा, "फिर, इसमें तुम्हारा आर्थिक लाभ भी विशेष नहीं है।"

"आप जो भी पद कहें, मैं स्वीकार कर लूँगा। आपको मैंने अपना गुरु मान लिया है। आपने मुझे जीवन दान भी दिया है।"

"तो ऐसा करो कि कोई भी पद स्वीकार न करो। बल्कि मैं तो कहूँगा कि तुम सरकारी पार्टी के सदस्य बनो ही नहीं। वहाँ पहले से ही इतनी लम्बी कतार लगी हुई है कि तुम्हारा नम्बर आते-आते टिकट खतम हो जाएगा।"—नेताजी ने बातचीत का रुख पलटकर कहा, "तुम विरोधी पार्टी के ही नेता बन जाओ।"

"विरोधी पार्टी का ?"

"हाँ-हाँ! इसमें पहला लाभ तो यह है कि तुम अपनी जीभ कतरनी की तरह चला सकोगे और सीना तानकर चल सकोगे। सरकारी पार्टी के लोगों को हमेशा गर्दन झुका कर चलना पड़ता है।"—नेताजी ने रहस्य सुलझाने के ढंग पर कहा।

"वह तो ठीक है। लेकिन मंत्रिपद का क्या होगा?"—रामलुभाया के मस्तिष्क में आकार लेने वाला इन्द्रासन टूटने लगा।

"मंत्रिपद में क्या धरा है? विरोधी पार्टी में रहोगे तो अध्यक्ष बन जाओगे। और, यदि अध्यक्ष न बन सको, तो उस पार्टी को छोड़कर अपनी अलग पार्टी बना लो। मेरा तो तुम्हें यही उपदेश है कि तुम विरोधी पार्टी के ही सदस्य बन जाओ। लेकिन हाँ, एक शर्त है।"

"शर्त" का नाम सुनते ही, रामलुभाया के माथे पर बल पड़ गये। उसने पूछा, "कैसी शर्त, गुरुजी?"

"पहले मैं तुमसे चन्द सवाल पूछूँगा। यदि तुम उनका सही-सही जवाब दे सके, तो फिर मैं तुम्हें किसी विरोधी पार्टी के दफ्तर में ले चलूँगा और तुम्हें सदस्य बनवा दूँगा। बोलो मंजूर है?"

"मुझे मंजूर है!" रामलुभाया ने दृढ़ स्वर में कहा, "आप पूछिए।"

"अनशन कर सकते हो?"—नेताजी ने पहला सवाल किया।

"उसमें क्या धरा है? अनशन की आदत तो हमारे परिवार के सभी सदस्यों को है। हम लोग महीने में कितने ही दिन कम खाकर गुजार देते हैं।"

"मैं उस अनशन की बात नहीं कर रहा हूँ। यह अनशन तो अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये किया जाता है। यह एक कला है। यदि इस कला में पारंगत हो गये, तो तुम व्यावसायिक ढंग पर भी अनशन कर सकते हो। खाना-पीना मुफ्त, पब्लिसिटी मुफ्त तथा साथ में कुछ आमदनी भी हो जायेगी।" नेताजी ने नेतागिरी का क, ख, ग पढ़ाते हुए कहा।

"वादा तो नहीं करता, गुरुजी, लेकिन मैं इस कला में माहिर होने की पूरी कोशिश करूँगा।"

"ठीक है!" नेताजी ने दूसरा सवाल किया, 'भाषण कर सकते हो?"

"जी हाँ! मैं किसी भी विषय पर भाषण करने में सिद्धहस्त हूँ। मैंने तीस-चार किस्म के भाषण याद भी कर रखे हैं। प्रसंग के अनुसार उसमें

फेर बदल कर मैं कहीं भाषण कर सकता हूँ। मेरे भाषण की विशेषता यह है कि उसे जल्दी कोई नहीं समझ सकता।"

"यह तो बड़ी अच्छी बात है। बात जितनी गूढ़ होती है, नेता उतना ही महान् समझा जाता है। अच्छा, यह बताओ कि तुम आंकड़े तैयार कर सकते हो?"

"आंकड़े? यह कौन-सी बला है?"

"यह कोई बला नहीं। कुछ लोग इसे 'सरकारी झूठ' के नाम से भी पुकारते हैं। दर असल, जनता और सरकार परस्पर आंकड़ों के माध्यम से बात करती है। ये आंकड़े पिछले दो-तीन वर्षों के आधार पर तैयार किये जाते हैं।" गुरुजी ने एक और गुर समझाते हुए कहा।

"ऐसे आंकड़े तो मैं चुटकियों में बना सकता हूँ। बचपन में, मैं गणित में बहुत कमजोर था, लेकिन नम्बर मुझे सदा अव्वल मिलते थे, क्योंकि सवालों का उत्तर मैं दूसरे लड़कों की कापियों में से देख लेता था। और उसके अनुसार सवाल को हल कर लेता था।" रामलुभाया के चेहरे पर बचपन की मधुर स्मृति नाच रही थी। नेता जी भी अपने शिष्य की स्वाभाविक चतुराई से प्रभावित हो रहे थे। उन्होंने अगला सवाल किया, "लड़ाना आता है?"

"हाँ-हाँ! बचपन में तीतर और बटेर लड़ा चुका हूँ। दो तीतरों के बीच में एक मादा तीतर रख दिया जाता था। उसको देखते ही दोनों तीतर एक दूसरे पर टूट पड़ते थे।" रामलुभाया के स्वर में अब संकोच जरा भी बाकी नहीं था। नेताजी के मन में प्रसन्नता हिलोरें मार रही थीं। उन्होंने मन ही मन कहा, "जी चाहता है कि इस बुढ़ौती में तुमसे भी कुछ सीख लूँ।" फिर प्रकट में वे बोलें, "सभा भवन में से निकल जाने का कोई अनुभव है?"

"अनुभव है भी और नहीं भी!"

"क्या मतलब?"

"मतलब साफ है! जब मैं कालेज में पढ़ता था, तो कई बार हाजिरी देकर क्लास में से निकल जाता था और सिनेमा देखता था। लेकिन, यह बात मेरे कुछ मित्रों के अलावा और किसी को मालूम नहीं होती थी।" रामलुभाया के स्वर से स्पष्टवादिता की गन्ध आ रही थी।

"यह अनुभव भी कम नहीं है। लेकिन नेता बनने के बाद जब तुम सभा भवन से उठकर चले जाओगे तो चुपके से नहीं बल्कि सबको जताते हुए।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" रामलुभाया ने सौम्य स्वर में कहा।

"रेल की पटरी उखाड़ सकते हो? आग लगा सकते हो?"—नेताजी ने गम्भीर स्वर में पूछा।

"आग लगा सकता हूँ। बचपन में होली जलाने का अनुभव है। मुहल्ले भर का कूड़ा-करकट, यहाँ तक कि रात को चुपके से दूसरों के मकानों के दरवाजे तथा खिड़कियों के पल्ले उतारकर, उन्हें जलाने का भी अनुभव है।"—रामलुभाया ने प्रसन्न स्वर में कहा, "लेकिन दुःख है कि मैं रेल की पटरी नहीं उखाड़ सकता।"

"कोई बात नहीं। वह तो मामूली बात है। तुम्हारे सहकारी तुम्हें उस कला से अवगत करा देंगे।"

"और भी कोई सवाल पूछियेगा, गुरुजी?" रामलुभाया ने संदिग्ध स्वर में कहा, "यदि मेरी परीक्षा पूरी हो गयी हो, तो हम आज ही किसी पार्टी के दफ्तर में चल चलेंगे। आप मेरा नाम लिखवा दीजिये।"

रामलुभाया की जल्दीबाजी नेताजी को अच्छी नहीं लगी। नेतागिरी में सफल होनेके लिए संयम तथा सहनशीलता की कितनी आवश्यकता होती है, यह वे भलीभांति जानते थे। फिर भी, अपने इस होनहार शिष्य को शुरू से ही संयम-तथा सहनशीलता का पाठ पढ़ाकर, वे उसे निराश नहीं करना चाहते थे। उन्होंने कहा, "नाम तो लिखवा ही दूँगा। अब तक, तुमसे जो सवाल पूछ रहा था, वह इसीलिए। अब आखिरी सवाल का जवाब दो, तो मैं तुम्हें अपना असली चेला मान लूँगा और तुम्हें नेता बना दूँगा।"

"पूछिए !"—रामलुभाया ने दृढ़ स्वर में कहा ।

"तुम्हें निशानेबाजी आती है ?"

"निशानेबाजी ? क्या मतलब ?"

"यही कि, क्या तुम अपना लक्ष्य सामने देखकर उसपर अचूक निशाना लगा सकते हो ?"—नेताजी ने स्पष्टीकरण किया।

इस प्रश्न से रामलुभाया के होश काफूर हो गये। नेताजी के इस प्रश्न का निशाना उसकी समझ में नहीं आ सका। यही सवाल यदि किसी सर्कस-कम्पनी के मैनेजर ने, उससे इंटरव्यू के दौरान में पूछा होता, तो वह उसका कुछ अर्थ समझ सकता था। कुछ देर तक वह निर्विकार मुद्रा से बैठा रहा। फिर सहसा, उसके मस्तिष्क में एक विचार बिजली की तरह कौंध गया। कुछ दिन पहले अखबार में पढ़ी हुई एक घटना उसकी आँखों के सामने नाच उठी। उसने सामने देखा। नेताजी उसके सामने की कुर्सीपर बैठे, उससे जवाब की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने गर्दन झुकाकर नीचे देखा, फिर वह कमरे के दूसरे कोनेपर आकर खड़ा हो गया। अब वह नेताजी से करीब बीस फुट की दूरीपर, ठीक उनके सामने खड़ा था। नेताजी आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देख रहे थे। पलक झपकते ही, रामलुभाया ने अपने पैर में से जूता निकाला और उसे नेताजीकी ओर फेंका। अब, सर नेताजीका था और जूता रामलुभाया का। नेताजी की आंखों में खून उतर आया। लेकिन फिर, जैसे दृश्य बदलता है, वैसे उनका क्रोध पहले तो गंभीरता में तथा बाद में प्रेम में बदलता गया। उन्होंने बड़े प्यार से रामलुभाया को अपने पास बुलाया और उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा "शाबास बेटा, शाबास! अब तुम मेरे शिष्य नहीं, मेरे गुरु हो। अब तुम्हें नेता बनने से कोई भी नहीं रोक सकता। तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।"

स्वर्ग में परिवार-नियोजन

भगवान् इन्द्र की हालत इन दिनों पतली थी। न सुरापान में मन रमता था, न अप्सराओं के सान्निध्य से ही कोई उष्णता उत्पन्न होती थी। फलाहार भी प्रायः बन्द ही था। इधर कुछ दिनों से, उन्हें अनिद्रा की भी शिकायत होने लगी थी। उनकी आँखों के नीचे काली लकीरें दिखाई देने लगी थीं और धन्वन्तरीजी ने उन्हें चेतावनी दे दी थी कि यदि उन्होंने अपने स्वास्थ्य पर उचित ध्यान नहीं दिया, तो स्वर्ग में शीघ्र ही 'इन्द्र के बाद कौन' की समस्या उत्पन्न हो जायगी।

भगवान् इन्द्र ने अपने शासन-काल में अनेक समस्याएँ देखी थीं और अपने छल-कपट तथा कूटनीतिक दूरदर्शिता से उनका उचित समाधान किया था। उनका सिंहासन कई बार डगमगाया था, किन्तु उन्होंने अपनी खानदानी चतुराई से अपनी सत्ता संभाल रखी थी—और इधर तो उन्होंने मृत्युलोक से आये इंजीनियर की सहायता से, अपने सिंहासन में ऐसी कल लगवा ली थी, जिससे सिंहासन का डगमगाना तो दूर रहा, उसका हिलना-डुलना भी बन्द हो गया था।

लेकिन पिछले कुछ दिनों से उनके मन्त्रिमण्डल पर संकट आया हुआ था। कई बार देवसभा में अविश्वास के प्रस्ताव आये और लगा कि सत्ता अब गयी, तब गयी। इधर उनकी देवसभा में नवयुवकों की संख्या बढ़ गयी थी। उनके प्रश्न बड़े ही मौलिक एवं अकाट्य हुआ करते थे। मृत्युलोक में होने वाले नित्य नये परिवर्तनों से परिचित होने के कारण ये नवयुवक, इन्द्र भगवान् के मन्त्रिमण्डल की खुलकर

आलोचना करते थे। उनके मन्त्रियों को बूढ़ा, खूसट तथा अकर्मण्य जैसे विशेषणों से अलंकृत करते थे। एक दिन तो एक नवयुवक ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि ब्रह्माजी की प्रजनन-शक्ति प्रायः नष्ट हो चुकी है, अतः उन्हें त्यागपत्र दे देना चाहिये। ब्रह्माजी ने क्रुद्ध होकर कहा, "मेरी प्रजनन-शक्ति के विषय में आपको क्या जानकारी है ? मैं अभी भी विश्व की जनसंख्या चौगुनी करने का सामर्थ्य रखता हूँ।" नवयुवकने एक क्षुद्र हँसी ब्रह्माजी की ओर फेंककर कहा, "विश्व की बात छोड़िए, ब्रह्माजी ! पहले स्वर्गलोक की खबर लीजिए। जानते हैं, पिछले छः महीनों में यहाँ की आबादी घटने लगी है ! कोई नयी अप्सरा उत्पन्न नहीं हो पायी। देवताओं को, अप्सराओं का जो कोटा मिला हुआ है, उसे भी पूरा किया जाना संभव नहीं है। इधर, सुरा का उत्पादन पहले से अधिक बढ़ गया है। उसका कोई ग्राहक नहीं रह गया है। यदि यही अवस्था रही, तो स्वर्ग की अपेक्षा नरक अधिक सुखमय हो जायगा।"

ब्रह्माजी का मस्तक नीचा हो गया। उन्होंने भगवान् इन्द्र की ओर सहायता की आशा से देखा। इन्द्र भगवान् ने देवसभा को आश्वस्त करते हुए कहा, "हमारा मन्त्रिमण्डल आपकी बातों पर विचार करेगा और शीघ्र ही समस्या का समाधान कर देगा।"

नवयुवक ने कहा, "और यदि समस्या का समाधान न हुआ, तो आपको इस्तीफा देना पड़ेगा।"

उसी दिन से ब्रह्माजी का पौरुष ढलने लगा था, और इन्द्र भगवान् की आँखों से नींद गायब थी। सच बात तो यह थी, कि इन दिनों गुप्तचर-विभाग के निर्देशक नारदजी स्वर्ग से बाहर थे और विभिन्न देशों की सद्भाव यात्रा कर रहे थे। कुछ दिनों तक तो इन्द्र भगवान् उनकी प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन जब देव सभा में विरोधी पक्ष का दबाव बढ़ने लगा, तो उन्हें मजबूर होकर नारदजी को गुप्त संकेत भेजना पड़ा। संकेत मिलते ही नारदजी अवतीर्ण हुए। इन्द्र भगवान् की खोई-खोई आँखें और उदास चेहरा देखकर नारदजी बोले, "आप

की यह अवस्था किसने कर दी, देवाधिदेव ? क्या सिंहासन की कल टूट गयी है, या विरोधी पक्ष की शक्ति बढ़ गयी है ? मैं मृत्युलोक की सैर कर रहा था, तभी मेरे छठे ज्ञानेन्द्रिय ने मुझे खतरे की सूचना दे दी थी।"

इन्द्र भगवान् ने गम्भीर स्वर में कहा, "आज रात ही मैं अपने मन्त्रिमण्डल की गुप्त बैठक बुलवा रहा हूँ। उसमें आपका उपस्थित रहना नितान्त आवश्यक है।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है!" कहकर नारदजी अन्तर्धान हो गये।

इन्द्र भगवान् के मन्त्रिमण्डल की गुप्त बैठक बड़े ही गम्भीर वातावरण में सम्पन्न हुई। अधिकांश देवताओं ने स्वर्ग में नये-नये आये लोगों की निंदा की तथा अपनी कार्यक्षमता के सम्बन्ध में लम्बे-चौड़े वक्तव्य दिये। नारदजी ने वृद्ध देवताओं की भी आलोचना की, साथ ही नये आनेवाले देवताओं की प्रशंसा भी की। उन्होंने कहा कि स्वर्ग में जो अशान्ति के बादल उठ रहे हैं, उसके पीछे विदेशी गुप्तचरों का हाथ है। उन्होंने कहा कि मुझे सन्देह है कि जो लोग मृत्युलोक में, धरतीपर स्वर्ग उतारने की बातें करते हैं, संभवतः वे ही लोग स्वर्ग की अशान्ति का कारण हैं। बैठक का समापन करते हुए, इन्द्र भगवान् ने कहा, "वैसे, हमारा गुप्तचर विभाग विदेशी गुप्तचरों को पकड़ने का प्रयास करेगा ही, लेकिन मेरा नारदजी से व्यक्तिगत अनुरोध है, कि वे इस कार्य को अपने हाथ में लें तथा अपनी रिपोर्ट सदन के सम्मुख प्रस्तुत करें।"

नारदजी 'नारायण—नारायण' कहकर जो अन्तर्धान हुए, तो पाँच दिन के बाद देवसभा में प्रकट हुए। उनके प्रकट होते ही देवसभा के सभी सदस्यों के कान खड़े हो गये। नारदजी ने तानपुरे के तार झंकृत करते हुए, समस्त सभासदों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। फिर एक मन्द मुस्कान बिखेरते हुए बोले, "अब आप

आराम से सोइए, देवाधिदेव ! दुःख के बादल अब छँटने लगे हैं और प्रकाश की किरण दिखाई देने लगी है ।'

एक नये सदस्य ने कहा, "नारदजी सदन को बहकाने की कोशिश कर रहे हैं । उन्हें चाहिये कि वे अपनी समग्र रिपोर्ट सदन के सम्मुख प्रस्तुत करें !"

इन्द्र भगवान् ने बात काटते हुए कहा, "नारदजी के वक्तव्य से मैं सन्तुष्ट हूँ । उनका वक्तव्य आशापूर्ण है । हो सकता है, कि इससे अधिक कुछ कहना, समस्त देवताओं के हित की दृष्टि से उपयुक्त न हो । नहीं तो नारदजी जैसे बहुसंभाषण प्रिय व्यक्ति इतना-सा वक्तव्य देकर रुक न जाते ।"

देवसभा का अधिवेशन समाप्त होने के बाद, नारदजी ने एकान्त पाकर इन्द्र भगवान् से कहा, "मैंने पहले ही कहा था कि स्वर्ग की अशान्ति के पीछे कुछ विदेशी गुप्तचरों का हाथ है । इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर, मैंने अपना शोधकार्य प्रारम्भ किया । कार्य कठिन था, लेकिन मैं हिम्मत नहीं हारा । प्रायः एक सहस्र देवताओं की फाइलें देखने के बाद, मुझे अपने मनका आदमी मिल गया ।"

इन्द्र भगवान् ने उत्कंठा भरे स्वर में कहा, "कौन है वह व्यक्ति ?"

नारदजी ने अत्यन्त ठंडे स्वर में कहा, "एक साधारण-सा व्यक्ति है । प्रायः छः मास पूर्व वह मृत्युलोक से यहाँ आया था, लेकिन अभी भी वह स्वर्ग के आलोक से प्रभावित नहीं हो पाया है ।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यही कि वह बिलकुल भोला-भाला है । प्रातःकाल घूमने जाता है, तदुपरान्त कसरत करता है । फिर अल्पाहार करता है और इसके बाद किसी काम से बाहर चला जाता है । पेयों में, केवल दुग्ध या शरबत ही ग्रहण करता है ।"

"क्या सुरापान भी नहीं करता ?" भगवान् इन्द्र ने मौलिक शंका उपस्थित की ।

"न सुरापान, न इन्द्रियों के लिए कोई मनोरंजन ही ! वैसे वह किसी तपस्वी से कम नहीं, लेकिन उसकी यह सादगी, ही यहाँ का वातावरण विषाक्त करने के लिए पर्याप्त है। विरोधी पक्ष का कथन सत्य ही है। यदि यहाँ के लोग सुरा तथा अप्सराओं के प्रति उदासीन हो गये, तो निश्चित है कि यहाँ आर्थिक संकट उत्पन्न हो जायगा।"

"क्या आपने उसे प्रत्यक्ष देखा भी है ?"

"क्यों नहीं ?" कहकर नारदजी ने अपनी आँखें कुछ इस प्रकार घुमायीं कि उनकी आँखों की पुतलियों में भगवान् इन्द्र को उस युवक की परछाँई दिखाई देने लगी।

"हुँ !" कहकर इन्द्र ने गम्भीर स्वर में कहा, "कठिनाई तो यह है कि हम इसपर कोई अभियोग भी नहीं लगा सकते। क्या इसकी फाइल में अन्य विशेष विवरण नहीं है ?"

"जितना भी कुछ था, मैने आपको सुना दिया है।" नारदजी बोले, "केवल एक ही बात का उल्लेख करना मैं भूल गया था—कि यह व्यक्ति मृत्युलोक में 'परिवार-नियोजन' नामक विभाग में अफ़सर था !"

इन्द्र भगवान् ने कहा, "आपको पुनः एक बार मृत्युलोक जाना पड़ेगा—'परिवार नियोजन' विभाग से उस व्यक्ति की फाइल गायब करनी होगी......"

"समझा...समझा...आजतक आपके लिए इतना पाप किया—एक पाप और सही..." कहकर नारदजी 'नारायण'...'नारायण' कहते हुए अन्तर्धान हुए और दूसरे ही क्षण मृत्युलोक में अवतरित हुए।

मृत्युलोक में नारदजी को 'परिवार-नियोजन' विभाग खोजने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। वे जिस सड़क पर अवतीर्ण हुए थे, उसकी दाहिनीं ओर वाले एक मैदान में 'राष्ट्रीय प्रदर्शनी' लगी हुई थी जिसमें 'परिवार-नियोजन' का भी स्टाल था। उसका साइनबोर्ड इतनी ऊँचाई पर लगाया हुआ था कि उसे प्रदर्शनी के मुख्य द्वार के बाहर से भी देखा जा सकता था। साइनबोर्ड पढ़ते ही नारदजी की चुटिया खड़ी हो

गयी। उन्होंने झट एक टिकट खरीदा और प्रदर्शनी के प्रांगण में प्रविष्ट हो गये। महाद्वार के ठीक सामने परिवार-नियोजन का कक्ष था। एक विशाल हाल में, चित्रों तथा छायाचित्रों के माध्यम से, देश की बढ़ती हुई आबादी का चित्र प्रस्तुत किया गया था। प्रदर्शनी देखने के लिए, विशाल जन-समूह उमड़ पड़ा था। भारत की बढ़ती हुई आबादी का चित्र देखकर, नारदजी के मन में ब्रह्माजी की प्रजनन शक्ति के बारे में रहा-सहा सन्देह दूर हो गया। काश, वे स्वर्ग के विपक्षी दल के लोगों को यह चित्र दिखला सकते और अपने मन्त्रिमण्डल को बचा सकते। खैर। नारदजी बड़े ही मनोयोग से प्रदर्शनी देखते रहे। जब स्टाल में भीड़ कम हो गयी, तो उन्होंने वहाँ उपस्थित, अफसर से लगनेवाले एक व्यक्ति से पूछा, क्यों भई, तुम्हारे महकमे के किसी व्यक्ति की हाल में मृत्यु तो नहीं हुई है?" नारदजी ने उस व्यक्ति का हुलिया भी बतला दिया, जो इन्द्र भगवान् के लिए सिर का दर्द बन गया था।

अफसर से लगनेवाले, उस व्यक्ति ने सिर नवाकर कहा, "जी हाँ। मेरे पहले, यहाँ एक अफसर थे। उन्होंने इस विभाग की बड़ी सेवा की। दिन भर जीप में बैठकर गाँवों में घूमते और परिवार-नियोजन का प्रचार करते। अपनी इसी भागा-दौड़ में, उन्होंने अपनी सेहत खराब कर ली। उन्हें, पांच हजार परिवारों में जाकर नस-बन्दी तथा लूप प्रचार का कार्य करना था, किन्तु कम उम्र में ही मृत्यु हो जाने के कारण, वे केवल आधा कोटा ही पूरा कर पाये। मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व भी उनके मुँह से एक ही बात निकल रही थी...

"क्या कह रहे थे, वे?" नारदजी ने उत्कंठा भरे स्वर में पूछा।

"कहते थे, इस जनम में न सही, लेकिन अगले जनम में अपना काम जरूर पूरा कर लूँगा।"

नारदजी ने हाथ जोड़कर उस अफसर से बिदा ली। बिदा होते समय, उनकी आँखें नम हो आयी थीं!

मृत्युलोक से स्वर्ग पहुँचते-पहुँचते नारदजी ने अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली थी। उसी रिपोर्ट के आधार पर भगवान् इन्द्र ने अपने मन्त्रिमंडल की गुप्त बैठक में एक वक्तव्य दिया जो अत्यन्त छोटा किन्तु उतना ही महत्वपूर्ण था! उन्होंने कहा, "जिस व्यक्ति पर हमें सन्देह था, उसके सम्बन्ध में हमने सभी तथ्य एकत्र कर लिये हैं। वह एक कर्तृत्ववान व्यक्ति है। यह ठीक है, कि धन के मोह में पड़कर, वह अपनी सरकार के लिये परिवार-नियोजन का कठिन कार्य कर रहा था। किन्तु हमारी सरकार के लिये वह बड़े पैमाने पर मनुष्य निर्माण का कार्य भी कर सकता है। हमने उससे इस सम्बन्ध में बात भी कर ली है—

"लेकिन आप देवसभा के सदस्यों को कैसे शान्त करेंगे? उन्हें कैसे सन्तुष्ट करेंगे?" एक मन्त्री महोदय ने पूछा।

"मैंने इसकी भी व्यवस्था कर दी है।" भगवान् इन्द्र ने कहा, "हम देवसभा के सदस्यों में से कुछ लोगों का चुनाव कर उनकी एक समिति गठित करेंगे, जो स्वर्ग पर नित्य आने वाले संकटों का अध्ययन करेगी, और उसका निराकरण करने के उपाय सुझायेगी! सुना है यह उपाय मृत्युलोक में अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुआ है!"



अपने मुँह मियाँ मिट्ठू

आत्मविज्ञापन आधुनिक युग का सबसे बड़ा वरदान है। जनतंत्र के इस युग में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपना हक माँगने का अधिकार है, वहाँ उसे अपना विज्ञापन करने की भी पूरी-पूरी छूट है। कहते हैं, जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं उनकी सहायता परमात्मा करता है। इसी तरह हम कह सकते हैं कि जो अपना विज्ञापन स्वयं करते हैं उनका प्रचार सारी जनता करती है।

पिछले दिनों मेरे एक संपादक मित्र ने इस सम्बन्ध में बड़ा ही मनोरंजक किस्सा सुनाया—"एक नेताजी बीमार हुए। पुरानी बीमारी थी और बुढ़ौती में उसने भयानक रूप धारण कर लिया था। यह कहना मुश्किल था कि कब चल बसेंगे। नेताजी के पुत्र, पौत्र तथा अन्य निकटतम सम्बन्धी और अनेक सहयोगी उनका अन्तिम दर्शन करने के लिए आये हुए थे। नेताजी ने आँख के इशारे से अपने सबसे बड़े लड़के को नज़दीक बुलाया और उसे अपने लेन-देन से अवगत कराया। किस-किस बैंक में कितना रुपया जमा है, किन-किन ठेकेदारों से कितना-कितना वसूल करना है इसकी सारी तफ़सील बताने के बाद उन्होंने अपनी पार्टी के एक युवक नेता को, जो उनके काम में दखल नहीं देते थे, अपना वारिस घोषित किया और फिर लेट गये। जब डाक्टरों ने जवाब दे दिया तो उनका लड़का तुलसी की पत्ती और गंगाजल लेकर उनके प्रस्थान की तैयारियाँ करने लगा। किन्तु नेताजी की आँखें किसी को खोज रही थीं। इतने में

उनकी निगाह एक रिपोर्टर पर टिक गयी और फिर उनके चेहरे पर एक दिव्य दीप्ति फैल गयी। उन्होंने इशारों ही इशारों में रिपोर्टर से बातें कीं, उसे प्रणाम किया और अन्तिम साँस ली।"

मैं ने अपने संपादक मित्र से इस अन्तिम घटना का रहस्य पूछा तो वे हँस कर बोले "इतना भी नहीं समझे, दोस्त? नेताजी ने आँखों ही आँखों में इशारा करके अपनी आखिरी इच्छा प्रकट की थी।"

"क्या थी उनकी अन्तिम इच्छा?" मैं ने पूछा।

मित्र ने कहा "अन्तिम इच्छा यह थी कि उनकी मृत्यु का समाचार 'बैनर' दे कर प्रकाशित हो।"

इस कहानी में सत्य की मात्रा चाहे जो भी हो, किन्तु आत्म-विज्ञापन की महत्ता पर अवश्य ही प्रकाश पड़ता है।

वास्तव में छोटे व्यक्ति से लेकर बड़े से बड़े व्यक्ति तक सभी इस रोग के शिकार हैं। इस दृष्टि से देखा जाये तो मित्र को पाँच नये पैसे का पान खिलाने वाले व्यक्ति में और गोशाला के लिए पाँच सौ रुपये चन्दा देने वाले व्यक्ति में विशेष अन्तर नहीं है। दोनों का एक ही उद्देश्य है—किसी तरह नाम प्रकाशित हो।

बड़ों की बात तो दूर, छोटे बच्चों में भी इस रोग के कीटाणु मौजूद रहते हैं। इस सम्बन्ध में मुझे सुप्रसिद्ध लेखक और नेता काका साहब गाडगिल का एक संस्मरण याद हो आया। सन् १९२७ में पूना में साइमन कमीशन आया हुआ था। उन्हीं दिनों एक दिन गाडगिल साहब के भतीजे ने उनसे पूछा, "नया जमाना पढ़ा आपने?"

"हाँ!" काका साहब ने उत्तर दिया। भतीजा बार-बार प्रश्न करता रहा और प्रत्येक बार गाडगिल साहब का पेटेन्ट उत्तर था, "हाँ-हाँ, पढ़ा!"

किन्तु इतने से ही भतीजा भला चुप होने वाला था! आखिर उन्हें बताया गया कि 'नया जमाना' में जुलूस की जो तसवीर छपी है,

उसमें उनका भतीजा भी है। जब गाडगिल साहब ने पुनः अखबार देखा तब कहीं भतीजा खुश हुआ।

जब छोटे बच्चों में आत्मविज्ञापन की इतनी भूख रहती है तो बड़ों का क्या कहना! बड़े लोगों का तो जन्म ही इसी लिए होता है कि उनका नाम समाचार-पत्रों में बराबर छपता रहे। पुत्र-रत्न की प्राप्ति से लेकर मृत्यु-शय्या तक के समाचार वे बड़े चाव से देखते हैं और मृत्यु पर छपने वाले समाचार की भी कुछ कल्पना कर लेते हैं। ठीक भी है, इंसान मर जाये और यदि उसकी मृत्यु का समाचार तक प्रकाशित न हो तब तो लानत है ऐसी मृत्यु पर!

मेरे महल्ले में एक अजीबोगरीब शख्स हैं। सुना है, कभी साहित्यिक रुचि पायी थी, किंतु संपादकों ने उनका कायाकल्प कर दिया और अब कहानी अथवा कविता लिखने के बजाए वे अखबारों के कालमों में संपादकों के नाम खुली चिट्ठियाँ लिखा करते हैं। उनकी सबसे बड़ी इच्छा यह है कि हर सप्ताह उनका एक शिकायत भरा पत्र समाचार-पत्र में प्रकाशित हो। उनके एक पत्र का नमूना देखिये—

"पिछले सप्ताह ही मैं 'नुकीली गली' की नालियों के संबंध में अपने विचार इस स्तंभ में व्यक्त कर चुका हूँ। ये नालियाँ, जिनमें कीड़े बिलबिलाते रहते हैं, प्रत्यक्ष रौरव का दृश्य उपस्थित करती हैं। बगल वाले महल्ले की नालियों की भी पहले यही दशा रही, किन्तु इधर दो-तीन महीनों से वहाँ की हालत सुधर रही है। सुना है, उस महल्ले से कोई सज्जन कारपोरेशन के सदस्य चुने गये हैं। मेरे विचार से, हर महल्ले से ही नहीं बल्कि हर गली से एक व्यक्ति यदि कारपोरेशन के लिए चुना जाये तो एक ही वर्ष के भीतर शहर का कायापलट हो जायेगा।"

आत्मविज्ञापन का रोग अब इतना अधिक बढ़ गया है कि जगह-जगह इसके इलाज के लिए दवाखाने खुले हैं और डाक्टर मौजूद हैं। एक सेठजी में यह मर्ज इतना बढ़ा कि उन्होंने इसके इलाज के लिए

एक कवि को अपनी सेवा के लिए 'रिजर्व' करा लिया। कवि महोदय हर रोज़ सेठजी के नाम से एक कविता लिखते। कुछ ही दिनों में सेठजी नगर के प्रमुख कवियों में गिने जाने लगे। बड़े-बड़े कवि-सम्मेलनों में उन्हें आदर के साथ बुलाया जाने लगा। एक बार ऐसे ही एक कवि-सम्मेलन में सेठजी का निमंत्रण था। सेठजी बड़ी शान से पंडाल में पहुँचे। वे अपने साथ कवि को भी ले गये थे, ताकि अपनी प्रतिष्ठा का दृश्य उसे भी दिखला सकें। कवि-सम्मेलन आरंभ हुआ। सबसे पहले छोटे-मोटे कवियों ने अपनी कविताएँ सुनायीं। इसके बाद सेठजी का नंबर आया। अध्यक्ष ने उनकी तारीफ़ में कुछ शब्द कहे और सेठजी को लक्ष्मी तथा सरस्वती की भावनात्मक एकता का प्रतीक कहकर उनसे कविता सुनाने की प्रार्थना की। वे माइक के पास जा पहुँचे। गला साफ़ किया और भूमिका बाँधते हुए बोले, "भाइयों! आज जो कविता मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ वह कविता नहीं वरन मज़दूरों के दिल की आवाज़ है। इस नवीनतम कविता का शीर्षक है 'मज़दूर'।"

शीर्षक सुनते ही दर्शकों ने तालियाँ बजायीं, जिससे सेठजी मन ही मन पुलकित हो उठे। उन्होंने तेज़ी से अचकन की जेब में हाथ डाला, किंतु जब हाथ बाहर निकला तो उसमें कविता वाला काग़ज़ नहीं था, बल्कि रूमाल था। सेठजी की पेशानी पर पसीने की बूँदें चमकने लगीं। सामने कवि महोदय बैठे हुए थे। उन्होंने प्रसंग की गंभीरता समझ ली, अतः झट अपनी जेब में से एक काग़ज़ निकाला और उस पर पूरी की पूरी कविता घसीट दी। फिर स्वयं ही माइक के सामने जा कर बोले, "क्षमा कीजिये, जिस कविता का जिक्र अभी सेठजी ने किया है वह ग़लती से मेरी जेब में रह गयी थी। दरअसल, सेठजी उसके संबंध में मेरी राय जानना चाहते थे। अब मैं वह कविता सेठजी को लौटा रहा हूँ।"

सेठजी ने काग़ज़ को उलटा-पलटा, किंतु कवि की घसीट लिखावट उनकी समझ में भला कैसे आती!

दर्शकों में फुसफुसाहट होने लगी। एक शरारती युवक ने खड़े हो कर कहा, "सेठजी शायद अपनी लिखावट नहीं पढ़ पा रहे हैं! अभी जिन सज्जन ने कविता का यह काग़ज सेठजी को दिया था वे ही इसे पढ़ने का कष्ट करें तो सेठजी को कष्ट नहीं होगा।"

एक दूसरे लड़के ने बैठे ही बैठे व्यंग्य कसा, "ठीक ही तो है! सेठजी लिखें, कवि बाँचें।"

इस पर श्रोताओं में बड़े जोर का ठहाका लगा और सेठजी चुपचाप वहाँ से खिसक आये।

इस घटना के बाद सेठजी ने अपने जीवन में दो तब्दीलियाँ कीं। एक तो उन्होंने कवि महोदय को छुट्टी दे दी और दूसरे कवि बनने का इरादा ही छोड़ दिया।

आत्मविज्ञापन के प्रेमियों का एक और भी पंथ होता है। ये लोग अपनी तारीफ़ में स्वयं तो कुछ नहीं कहते, किंतु किसी बड़े आदमी की सफलता में किस प्रकार उनका हाथ रहता है, इसका वर्णन ये बड़े ही सजीव ढंग से कहते हैं। नेताओं को जिताने में, कारपोरेशन के सदस्य बनाने में या उन्हें मेयर अथवा डिप्टी-मेयर बनवाने में ऐसे लोगों का बहुत बड़ा हाथ रहता है।



जन-सम्पर्क

जाड़े की ठंढी रात थी और मंत्रीजी पंखे के नीचे आराम कुर्सी में लेटे गम्भीर मुद्रा में विचार कर रहे थे। उनके चाँदपर पसीने के बूँदें चुहचुहा आयी थीं।

मंत्रीजी राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। जनता में, पार्टी में तथा मंत्रिमण्डल में उनका नाम आदर के साथ लिया जाता था। सवाल देश की सुरक्षा का हो या बढ़ती हुई महँगाई का या न रुक सकनेवाली जनसंख्या का, मंत्रीजी की राय सबसे पहले पूछी जाती थी और उसपर अमल किया जाता था। पार्टी का काम करते-करते उनके काले बाल पहले तो सफेद हो गये थे और अब बिलकुल गायब हो चुके थे। संकट के हर मौकेपर उन्होंने देश को नया नारा दिया था। शायद इसीलिए कुछ लोग उन्हें नारों का मंत्री कहा करते थे। मंत्रीजी द्वारा दिये गये नारों तथा विदेश मंत्रालय द्वारा चीन तथा पाकिस्तान को भेजे जाने-वाले विरोध पत्रों की संख्या में हमेशा होड़ लगी रहती थी, किन्तु हमेशा मंत्रीजी का ही पलड़ा भारी रहता था।

वही मंत्रीजी जाड़े की उस रात, पार्टी की दिन ब दिन खराब होनेवाली हालतपर विचार कर रहे थे। जनता में उनकी पार्टी के प्रति अविश्वास की भावना भर रही थी। लोग खुले आम नेताओं को गाली देते थे तथा मंत्रियों को कोसते फिरते थे। मंत्रीजी इन्हीं सब कारणों पर विचार कर रहे थे। जनता के लिए वे क्या नहीं कर रहे थे? देश की चिन्ता के मारे उन्हें दोनों वक्त भूख भी नहीं लगती थी। केवल फलों

तथा विटामिनों का सहारा लेना पड़ता था। जनता की भलाई के लिए उन्हें साल के ६ महीने विदेशों में रहना पड़ता था। फिर भी जनता उनसे दूर जा रही थी।

सहसा मंत्रीजी की आँखें खुलीं। 'ओह !' उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा। 'इधर काफी दिनों से, मैं अपनी जनता से नहीं मिल सका हूँ ! उनसे उनकी कठिनाइयों के बारे में नहीं पूछ सका हूँ।' वे आराम कुर्सी में से उठे, बाहर आये, इधर उधर टहले और फिर मन ही मन, जैसे कोई निश्चय कर रहे हों; इस ढंग से बोले, 'अगली मीटिंग में, मैं पार्टीवालों को 'जनसम्पर्क' का नया नारा दूँगा और खुद भी अधिक से अधिक जनता से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करूँगा।'

मंत्रीजी मन, वचन तथा कर्म तीनों से ही शुद्ध थे। जो भी निश्चय एक बार कर लेते, अन्त तक उसका निर्वाह करने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि एक साल के अन्दर वे एक करोड़ जनता से सम्पर्क स्थापित करेंगे, भले ही इसके लिए उन्हें जनता के पास जाना पड़े या खुद जनता को ही अपने पास बुलाना पड़े।

मंत्रीजी की कोठी के विशाल दीवानखाने में एक हजार के करीब दर्शनार्थी एकत्र थे। हरएक के मन में एक सवाल था, जो सिर्फ मंत्रीजी से मुलाकात के बाद ही हल हो सकता था। लेकिन मंत्रीजी इस समय दीवानखाने के ठीक ऊपरवाले अपने कमरे में किसी फिल्म निर्माता से उसकी आगामी फिल्म के बारे में विचार विमर्श कर रहे थे।

यूँ तो मंत्रीजी की कोठी पर पहले भी मिलने वालों का ताँता लगा रहता था लेकिन जबसे उन्होंने जनसम्पर्क का नया नारा बुलन्द किया था, तब से भीड़ की संख्या बराबर बढ़ रही थी। मंत्रीजी ने हाल में ही एक क्लर्क की नियुक्ति की थी जो एक रजिस्टर में रोज के मिलने वालों के नाम तथा उनके हस्ताक्षर अंकित करता था।

नीचे दीवानखाने में बैठे दर्शनार्थी बेचैन हो रहे थे। कुछ कोचों पर बैठे अपनी ही जगह पर हलचल कर रहे थे, कुछ कुर्सियों में विराजमान थे और जिन्हें कोच या कुर्सी का सहारा नहीं मिल पाया था वे बेचारे दीवानखाने में ही इधर-उधर टहल रहे थे। रह-रहकर वे दीवान खाने के ऊपर वाले कमरे की ओर ताक लेते थे। सहसा मन्त्रीजी के कमरे का दरवाजा खुला और उसमें से फिल्म निर्माता महोदय खुशी-खुशी बाहर निकले। उनके जाते ही मन्त्रीजी के पी० ए० ने कहा, 'अब सिर्फ पाँच मिनट का समय है। ग्यारह बजे आपको दफ्तर पहुँचना है। कहिए तो डाक्टर हरवंसलाल को बुलवा लूँ।'

मन्त्रीजी ने गर्दन हिलाकर मानो अपनी स्वीकृति दे दी। हरवंसलाल उनके बचपन के दोस्त और कितनी ही अच्छी और बुरी करतूतों के चश्मदीद गवाह थे। डाक्टर हरवंसलाल ऊपर आए तो मंत्रीजी ने खड़े होकर उनका स्वागत करते हुए कहा, 'हलो, डाक्टर ! कहो, कैसे हो ? भाभीजी का क्या हाल है ?' फिर उलाहना देने के स्वर में बोले, 'तुम तो मिलते ही नहीं हो। मिलते रहा करो, भई !'

डाक्टर साहब ने हँसकर कहा, 'आप तो इतना बिजी रहते हैं। खामखाह, आपका समय क्यों बर्बाद करूँ ? हां, आज कुछ काम था इसीलिए चला आया।'

'आज तो माफ करना, भई। अब दफ्तर जाना है। फिर कभी मिलना और इतना कह कर मन्त्री जी सीढ़ियाँ उतरने लगे। उन्हें देखते ही नीचे के दीवानखाने में एकत्र सभी दर्शनार्थी खड़े हो गये। मंत्रीजी ने उन सभी का मुस्कराकर स्वागत किया और हाथ हिलाकर सबसे कुशल-मंगल पूछा। फिर, उनके बीच से रास्ता निकालते हुए बाहर पोर्टिको में जा पहुँचे, जहाँ कार उनका इन्तजार कर रही थी। रास्ते भर उन्हें इस बात का समाधान था कि आज मैंने एक हजार व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया।

जन सम्पर्क का नशा इतना गहरा था कि मंत्रीजी कोई भी मौका हाथ से छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। अपनी पार्टी द्वारा आयोजित सभा सम्मेलनों में तों वे शामिल होते ही थे, साथ ही विरोधी पार्टियों द्वारा आयोजित सम्मेलनों में भी वे किसी प्रकार प्रकट हो जाते थे। फिल्म उद्घाटन से लेकर रेल-दुर्घटना तक सभी प्रसंगों में वे उपस्थित रहते तथा वहाँ उपस्थित जनता की संख्या नोट करते थे। अगले महीने उनका बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम था। देश की चौथी योजना से सम्बन्धित कुछ अत्यन्त आवश्यक मामलों के मसौदे उन्हें तैयार करने थे, देश की सुरक्षा से सम्बन्धित कुछ गुप्त कारवाइयाँ करनी थीं तथा दो सप्ताह की विदेश यात्रा भी करनी थी। मंत्रीजी के लिये विदेश यात्रा का कोई मोह नहीं था। बल्कि, उन्हें इस बात का दुःख था कि बाहर रहने पर वे अपनी जनता से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकेंगे।

इसी बीच कुंभ-मेला आ रहा था। लाखों की संख्या में जनता इलाहाबाद को ओर प्रस्थान कर रही थी। पुलिस की ओर से भी पूरा-पूरा इन्तजाम था। जिस दिन नहान था, उसी दिन एक प्रदर्शनी का उद्घाटन भी होनेवाला था। पूरी आशा की थी कि प्रदर्शनी का उद्घाटन प्रधान मन्त्री के हाथों होगा। लेकिन ऐन वक्त जाने क्या हो गया, प्रधान मन्त्री को किसी कारणवश दिल्ली में ही रुक जाना पड़ा और उन्होंने अपने निजी प्रतिनिधि के रूप में मन्त्रीजी को प्रदर्शनी का उद्घाटन करने भेज दिया।

मन्त्रीजी ने कुंभ में उपस्थित सभी व्यक्तियों को अभिवादन किया और वहाँ उपस्थित जनता की संख्या का अनुमान लगाया। मन्त्रीजी के अनुसार एक लाख से कम की भीड़ नहीं थी। लेकिन पी० ए० ने १॥ लाख का आँकड़ा सुनाया, जिसे मन्त्राजी ने तुरत मान लिया। मन्त्रीजी ने नागा साधुओं को भी प्रसन्न कर लिया और उनके सरदार के साथ हाथी पर बैठकर एक फोटो खिंचवायी। वह फोटो बाद में वृत्तचित्रों में भी प्रदर्शित की गयी और काफी सराही गयी।

छ महीने के बाद जब मन्त्रीजी ने रजिस्टर देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि अब तक वे केवल पचीस लाख जनता से ही सम्पर्क कर पाये हैं। इस रफ्तार से काम चला तो उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने में दो साल लग जायँगे। उन्होंने अपनी ओर से किसी भी प्रकार की कोताई नहीं की थी। जनता से सम्पर्क स्थापित करने का एक भी मौका उन्होंने हाथ से जाने नहीं दिया था। फिल्म अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों द्वारा आयोजित विराट समारोह से लेकर बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेताओं की महायात्रा तक के प्रसंगों में भी वे शरीक हुए थे। तब कहीं, वे पचीस लाख की संख्या तक पहुँच पाये थे। अब बाकी की पचहत्तर लाख की संख्या तक वे एक ही झटके में पहुँचना चाहते थे। लेकिन ऐसा कौन सा समारोह हो सकता है, जिसमें एक साथ पचहत्तर लाख की भीड़ होती हो?

लेकिन मन्त्रीजी की परेशानी एक फिल्म निर्माता ने दूर कर दी। उक्त फिल्म निर्माताजी मन्त्रीजी से पहले भी एक बार मिल चुके थे। वे मन्त्रियों के जीवन पर एक रंगीन फिल्म बनाना चाहते थे। फिल्म हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों भाषाओं में बनने वाली थी। सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं, केवल विदेशी मुद्रा की आवश्यकता थी, क्योंकि फिल्म निर्माता महोदय फिल्म का अधिकतर हिस्सा विदेशों में शूट करना चाहते थे।

मन्त्रीजी ने फिल्म निर्माता महोदय की बातों पर अच्छी तरह गौर किया और उन्हें सरकार से विदेशी मुद्रा दिलाने का आश्वासन दिया। दरअसल फिल्म के माध्यम से मन्त्रीजी जी अपना ही स्वार्थ निकालना चाहते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि फिल्म ही ऐसा माध्यम है जिसके जरिये वे कम से कम समय में अधिक से अधिक जनता से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। हाँ चलते-चलाते मन्त्रीजी ने फिल्म निर्माता महोदय के सामने यह शर्त रखी कि फिल्म के एक आध शाट में वे भी भाग लेंगे। फिल्म निर्माता महोदय ने यह शर्त बिना किसी शर्त के स्वीकार कर ली।

पाँच-छः महीने के अन्दर फिल्म निर्माता महोदय की फिल्म बन गयी और तमाम बड़े-बड़े शहरों में प्रदर्शित भी हो गयी। हालाँकि उस फिल्म में मन्त्रीजी को किसी ने नहीं पहचाना, फिर भी मन्त्रीजी ने अपनी जनता को खूब पहचाना। अखबारों में उक्त फिल्म के सम्बन्ध में नित-नये समाचार प्रकाशित होते थे और मन्त्रीजी यह अन्दाजा लगाते थे कि कितने लोगों ने उन्हें उस फिल्म में देखा होगा। उन्होंने अपने पी० ए० से भी कह रखा था कि वह इस सम्बन्ध में सही-सही आँकड़े प्रस्तुत करे।

साल भर के बाद, जब पी० ए० ने साल भर में, सम्पर्क में आने वाली जनता की संख्या प्रस्तुत की तो मन्त्रीजी पहले उस पर झल्ला उठे किन्तु बाद में वे सोचने लगे। एक करोड़ जनता से सम्पर्क स्थापित करने की उनकी प्रतिज्ञा करीब-करीब पूरी हो गयी थी। कोटा पूरा होने में, अब केवल एक की कमी रह गयी। 'यह एक व्यक्ति कौन हो सकता है, जिससे मैं नहीं मिल पाया ?' मन्त्रीजी सोचने लगे। धीरे-धीरे उनके सामने उस व्यक्ति की रूपरेखा स्पष्ट होने लगी। वह व्यक्ति और कोई नहीं, वे स्वयं ही थे! बारह महीने की उस भाग दौड़ में जनता से सम्पर्क स्थापित करने के चक्कर में, उन्हें खुद के बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं मिल पायी थी। एक साल के अन्दर उन्होंने एक कम एक करोड़ जनता को दर्शन दिया था, उन्हें दूर से देखा था, पास से देखा था, उन्हें अभिवादन किया था। सचमुच उन्होंने बैठे-बिठाये कितना महान् कार्य कर डाला था। उनकी हालत उस राही की सी हो गयी थी जो थकान की परवाह न कर बिना पीछे मुड़े अपनी राह पर चलता रहता है। लेकिन जब उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्हें सहसा गहरी थकावट महसूस होने लगी। उन्होंने अपने पी० ए० को बुलवाया और उससे थके हुए स्वर में कहा, "आप इस महीने का मेरा सभी प्रोग्राम कैंसिल करवा दीजिये। हम अगले सप्ताह सप्ताह कुल्लू जायँगे और थोड़ा आराम करेंगे।"

एक ईश्वर : अनेक उलझनें

एक बार स्वर्ग के सुखमय वातावरण से ऊबकर ईश्वर ने भारतवर्ष जाने का निश्चय किया। लक्ष्मीजी ने उन्हें कई बार उनके निश्चय से परावृत करने का प्रयत्न किया, लेकिन फिर भी जब ईश्वर का निश्चय अटल बना रहा तो लक्ष्मीजी ने उनसे कहा "सुना है, भारतवर्ष में अकाल पड़ा हुआ है ? ठीक से खाने-पीने को भी नहीं मिल पाता ? अच्छा हो, यदि आप अपने साथ एक क्विंटल सुनहला गेहूँ और एक क्विंटल चावल लेते जाएँ !"

लक्ष्मीजी की आज्ञा शिरोधार्य मान कर, ईश्वर ने स्वर्ग से प्रस्थान किया और दूसरे ही क्षण भारतवर्ष की भूमि पर अवतरित हुए। उन्हें जितनी खुद की चिन्ता नहीं थी, उससे अधिक चिन्ता गेहूँ और चावल की थी। जगह-जगह कितने ही अधिकारियों को घूस देने के बाद, ईश्वर राजधानी पहुँचा, और वहाँ के एक अच्छे-खासे मकान में टिक गया। उनके साथ उस मकान में अन्य कितने ही किरायेदार थे, जो शीघ्र ही उनके मित्र बन गये। धीरे-धीरे सभी किरायेदारों को मालूम हो गया कि ईश्वर कहलानेवाले उस युवक के पास एक बोरा चावल और एक बोरा गेहूँ है। एक दिन ईश्वर रात में जल्दी सो गया कि एकाएक उसके कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। ईश्वर ने दरवाजा खोला तो देखा कि उसके सामने एक पुलिस अधिकारी खड़ा है, जो आग्नेय नेत्रों से कभी उसकी ओर तो कभी उस कमरे का निरीक्षण कर रहा है। उसके पीछे पुलिस के आठ दस कान्स्टेबुल

थे। दो कान्स्टेबुलों ने ईश्वर को पकड़ लिया और दो कान्स्टेबुल कमरे में घुसकर ठीक वहाँ पहुँच गये जहाँ चावल के बोरे रखे हुए थे। पुलिस अफसर ने ईश्वर से कड़क कर पूछा।

"इसमें क्या है ?"

"गेहूँ और चावल।" ईश्वर ने सौम्य स्वर में उत्तर दिया।

"और, चीनी का बोरा कहाँ रखे हो ?"

"चीनी ? हम लोग चीनी नहीं खाते, अमृत पीते हैं।"

"तो फिर चीनी बेच देते होंगे ? ठीक है, अपना नाम बताओ—

"ईश्वर !"

"बाप का नाम ?"

"ईश्वर खुद ही सबका बाप होता है, उसका कोई बाप नहीं होता।"

अन्य कान्स्टेबुल जोर से हँसने लगे। लेकिन पुलिस अफसर ने एक क्रोधपूर्ण दृष्टि उन सिपाहियों की ओर फेंककर कहा, "चलो, तुम्हें अभी तुम्हारे बाप के दर्शन कराते हैं। हवालात में जाओगे तो पूरा खानदान याद आ जायगा।"

ईश्वर की समझ में बात नहीं आयी। वह खामोश खड़ा रहा। तभी पुलिस अफसर ने सवाल किया, "यहाँ टोटल राशनिंग है। इतना गेहूँ कहाँ से लाये हो ?"

"स्वर्ग से।"

"वह हिन्दुस्तान के नक्शे में किधर पड़ता है ?"

"कहीं भी नहीं।" ईश्वर ने कहा, "तुम मुझे हवालात ले चलना चाहते हो न ? तो चलो, मैं तैयार हूँ !"

रातभर ईश्वर हवालात में बन्द रहा, लेकिन उसने पुलिस की किसी भी बात का जवाब देने से इनकार कर दिया।

इधर, पुलिस ने ईश्वर के कमरे पर सरकारी ताला लगा दिया था और रातभर उनका वहाँ पहरा था। दूसरे दिन, जब सबके सामने गेहूँ

का बोरा खोला गया, तो उसमें गेहूँ का पता भी नहीं था। अलबत्ता, उसमें सत्तू भरा हुआ था और जब दूसरा बोरा खोला गया तो उनमें चावल की जगह पीसा हुआ नमक मिला।

मकान के सभी किरायेदार, ईश्वर कहलाने वाले उस व्यक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे और पुलिस के सिपाही मुँह लटकाये चले जा रहे थे।

एक दिन ईश्वर राजधानी की सड़कों पर यूँ ही भटक रहा था, कि सहसा उसे लाउडस्पीकर की ध्वनि सुनाई पड़ी। वह उस मकान की दिशा में चलता गया और एक मैदान में पहुँचा, जहाँ हजारों की भीड़ एकत्र थी। कोई मन्त्रीजी भाषण दे रहे थे। ईश्वर ने घूम-घूम कर उपस्थित जन-समूह का निरीक्षण किया। उपस्थित लोगों में प्रायः आधे लोग भूखे-कंगाल दिखाई देते थे, तो प्रायः आधे लोग मोटे-ताजे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत टोपी पहने वातावरण की शोभा बढ़ा रहे थे। मन्त्रीजी कह रहे थे, "हमने बड़ी कठिनाई से बिहार और उत्तर-प्रदेश के अकाल का सामान किया है, लेकिन अब हमारे सामने आशा की पहली किरण फूटने लगी है। देश के कोने-कोने से, मानसून आने के जो समाचार प्राप्त हो रहे हैं, उससे हमारी आशा बलवती होती जा रही है। इस बार हमने दो करोड़ एकड़ अतिरिक्त भूमि में अन्न उत्पन्न करने का फैसला किया है। विदेशों से हजारों ट्रैक्टर मँगाये जा रहे हैं। खाद तथा उर्वरक के कारखाने खोलने के लिए विदेशी सरकारों से सम्पर्क स्थापित किया जा चुका है। हमारी कृषि-अनुसन्धान शालाओं ने नये किस्म के बीज तैयार कराने के लिए लाखों रुपयों का अनुदान स्वीकृत कर लिया गया है। यदि ईश्वर ने हमारा साथ दिया, यदि पानी समय पर तथा उचित मात्रा में बरसता रहा, तो अगले तीन वर्षों में हम अनाज के मामले में न केवल स्वावलम्बी बन जायेंगे, बल्कि अन्य देशों को अनाज निर्यात करने की स्थिति में आ जाएँगे।"

इतने में ईश्वर ने टोका, "आप झूठ बोलते हैं, मन्त्रीजी ! मानसून ने आपको जितना धोखा नहीं दिया, उससे अधिक धोखा आपने अपनी जनता को दिया है।"

मन्त्रीजी ने क्रोध से बिफर कर कहा, "वह कौन विद्रोही है, जो इस प्रकार की अनर्गल बातें कर रहा है ?"

ईश्वर ने कहा, "मैं कोई विद्रोही नेता नहीं—ईश्वर हूँ। जितनी मुझे आपकी चिन्ता है, उतनी किसी और को न होगी। लेकिन मैं जानता हूँ कि आप दो करोड़ एकड़ अतिरिक्त भूमि में खेती कराने के लिए जो खाद और बीज देंगे, उसका तीन चौथाई बाजार में बिक जाएगा। खेत के पल्ले क्या पड़ेगा ? सिर्फ पानी ! और, सिर्फ पानी से फसल उपजाने का उपाय ईश्वर को भी मालूम नहीं है।"

जनता, जो अब तक मन्त्रीजी का भाषण सुन रही थी, अब पीछे मुड़कर ईश्वर का भाषण सुनने लगी। उन्हें लगा जैसे उनके सामने क्रान्ति का मसीहा खड़ा है, जो शीघ्र ही देश को तमाम कष्टों से उबार लेगा। लेकिन, इतने में मन्त्रीजी ने जनता में खड़े कुछ मोटे-ताजे व्यक्तियों को इशारा किया। उनका इशारा पाते ही सभा में ईंटें बरसने लगीं। ईश्वर सभा-स्थल से अन्तर्धान हो गया और मंच पर ठीक मन्त्रीजी की बगल में प्रकट हो गया। जो लोग ईश्वर पर ईंटें बरसा रहे थे, वे अब उन्हें पीटने के लिए मंच पर पहुँच गये। लेकिन इतने में, ईश्वर ने कुछ चमत्कार किया और मंच पर एक के स्थान पर दो मन्त्री दिखाई देने लगे। जो लोग ईश्वर को मारने के इरादे से आये थे, वे हैरत में पड़ गये कि असली ईश्वर कौन है ? उन्होंने उनमें से एक मन्त्री को घेर लिया और उन्हें पीटने लगे। ठीक इसी बीच, दूसरे मन्त्रीजी, जो वास्तव में ईश्वर था, पता नहीं कब अन्तर्धान हो गया !

एक दिन ईश्वर पड़ोस के एक गाँव में पहुँचा, जहाँ मेला-सा लगा हुआ था। ईश्वर ने करीब जाकर पूछा, तो मालूम हुआ कि

वहाँ 'परिवार-नियोजन' का शिविर लगा हुआ है। ईश्वर ने परिवार-नियोजन के सम्बन्ध में काफी सुन रखा था और उन्हें उसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा थी। उसने डाक्टरों से जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की। अन्त में, वह उस कक्ष में जा पहुँचा, जहाँ नसबन्दी का आपरेशन किया जा रहा था। ईश्वर ने एक डाक्टर से, जो किसी नवयुवक का आपरेशन करने जा रहा था, पूछा, "आप आपरेशन क्यों करते हैं?"

"क्योंकि देश की आबादी बढ़ती चली जा रही है। और यदि, इस पर समय रहते काबू न पाया गया, तो आदमी-आदमी को खा जाएगा।"

"तो आप केवल शादी-शुदा लोगों का ही आपरेशन करते होंगे?"

"जी, हाँ!" डाक्टर ने जवाब दिया!

"लेकिन, मैं जानता हूँ कि आप जिस नवयुवक का आपरेशन करने जा रहे हैं, उसकी शादी कभी नहीं हुई और न कभी होगी। वह बेचारा तो रुपयों की लालच में आपरेशन करवा रहा है।"

इतना सुनते ही वह नवयुवक भाग गया। डाक्टर ने ईश्वर की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखकर कहा, "आपने हमारी एक पेशेंट कम कर दिया है। हम अपने बास को क्या जवाब देंगे?"

"उनसे कह दीजिए कि पेशेंट शादी-शुदा नहीं था।" ईश्वर ने भोले-भाले ढंग से कहा।

"वह भले ही शादी-शुदा न हो, लेकिन हम लोग तो शादी-शुदा हैं।" एक दूसरे डाक्टर ने कहा, "यदि हमारा कोटा पूरा नहीं हुआ, तो हमारी नौकरी, खत्म हो जाएगी। और, हमारे बच्चे भूखे मर जाएँगे।" और, इतना कह कर दोनों डाक्टरों ने मिलकर ईश्वर के दोनों हाथ पकड़ कर कहा, "तुमने हमारा एक पेशेंट कम कर दिया

है, लेकिन तुम नहीं भाग सकते, क्योंकि तुम शादी-शुदा मालूम होते हो। तुम्हें अपना आपरेशन करवाना होगा।"

ईश्वर ने अपने को बचाने की काफी कोशिश की, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। वह जब परिवार-नियोजन कक्ष से लौट रहा था, उस समय उसे अपने ऊपर हद से ज्यादा शर्मिंदगी महसूस हो रही थी, क्योंकि एक इन्सान ने उसका पुरुषत्त्व छीन लिया था—एक इन्सान ने, जिसका रचयिता वह स्वयं था।



नेताजी की आत्मशुद्धि

'लाला घरभरन लाल' किसी जातिविशेष में पाया जानेवाला नाम नहीं है, लेकिन इस विशेष व्यक्ति में जो गुण पाये गये हैं, उनसे उन्हें लाखों व्यक्तियों में अलग पहचाना जा सकता है। जैसे, लालाजी का पुश्तैनी व्यवसाय घी-तेल वेचने का है और इसके अनुसार उनमें वंश-परंपरागत तैलबुद्धि की आशा करना स्वाभाविक है· लेकिन यहीं तो घरभरन जी अपने परिवारवालों से अलग दिखाई देते हैं। उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की, अतिरिक्त ज्ञानकी पिपासामें अनेक पुस्तकें पढ़ीं, फिर दुकान पर वैठे, उसे चमकाया, कुछ चमक अपने शरीर पर भी ली और एक दिन दुकान भी छोड़ दी। घी की दूकान करने पर भी, उनमें अन्य कितने ही गुण मौजूद थे। घी की ही भाषा में कहा जाय, तो उन्हें 'विटामिन ए' और डी मुक्त वनस्पति घी कहा जा सकता है।

लालाजी का मन किसी एक व्यवसाय में नहीं रमा। उन्होंने जीवन में अनेक व्यवसाय किये, किन्तु जीवन को व्यवसाय नहीं बनाया। घी की दूकान बन्द करते समय उनके पास काफी माया एकत्र हो गयी थी। अब वे कोई अन्य व्यवसाय अपनाना चाहते थे कि एक दिन सहसा उनके सीने में दर्द शुरू हो गया और वे बेहोश हो गये। उन्हें शहर के मशहूर नर्सिंग-होम में ले जाया गया। दो ही दिन के बाद उन्हें आराम मिला। तीसरे दिन, मैं गुलाब का गुलदस्ता लेकर उनसे मिलने नर्सिंग-होम पहुँचा तो मैंने सहज मुस्कराहट से कहा, "तुम अब

जीवन के महत्त्वपूर्ण चौराहे पर आ पहुँचे हो। यहाँ से तुम्हारे जीवन को नयी दिशा मिल सकती है।"

घरभरन दर्द के कारण आयी कमजोरी के बावजूद अपनी स्वाभाविक अधीरता से बोला, "मैंने कुछ समझा नहीं। जरा खोल कर कहो।"

"तुम तो जानते ही हो कि हर महान् नेता सीने के दर्द से ही मरता है। वैसे मृत्यु अवश्यम्भावी है, लेकिन सीने के दर्द से मरना महत्त्व की बात है। जिसके सीने में जनता-जनार्दन के दुःखों के प्रति दर्द हो, वही सीने के दर्द से मरता है—अर्थात् महान् नेता बनता है।"

मेरी इस उक्ति से घरभरन खिल-खिलाकर हँस पड़ा। फिर बोला, "तुम्हारी बातों में सचाई भी है और व्यंग्य भी। लेकिन, मैं तुम्हारी बातों पर अमल करने की पूरी-पूरी कोशिश करूँगा।"

लाला घरभरनजी का इसके बाद का जीवन किसी से छिपा नहीं है। पाँच साल के भीतर वे राजनीतिक आकाश में धूमकेतू की तरह चमके। कभी खेल-कूद के आयोजनों में उनका नाम आता तो कभी मुहल्ला-सुरक्षा समिति के कार्यों में उनका डंका सुनाई पड़ता। कभी वे जवानों के लिए कैंटीन खोलते, तो कभी राष्ट्रीय पुस्तक समारोहों में दिखाई देते। इस बीच, वे दो बार राष्ट्र के खर्च से विदेश भी हो आये। लेकिन, घरभरन लाल अपनी इस प्रगति से उतने सन्तुष्ट नहीं थे। राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त करने की हवस उनके मन में हिलोरें मार रही थी। फलतः उन्होंने राष्ट्रीय सरकारी संस्था में नाम लिखाया और उसके लिए कार्य करने लगे। इस बीच, उन्होंने दो पत्रकारों को भी ठीक कर लिया था। इनमें से एक पत्रकार उनके संबंध में अच्छी-अच्छी बातें प्रकाशित करता था तो दूसरा कुछ ऐसे समाचार प्रकाशित करता था—जिससे जनता में लालाजी के सम्बन्ध में विचारमंथन शुरू हो जाता था। कभी-कभी, लालाजी पत्रकारों को साथ लेकर, सैर-सपाटे के लिए निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों का पैदल चक्कर

लगाते थे! दूसरे दिन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होता कि लालाजी गांवों की स्थिति का निरीक्षण करने के लिए पैदल यात्रा कर रहे हैं। कभी-कभार वे देश की परिस्थिति पर प्रकाश डालनेवाला एक-आध लेख भी प्रकाशित करवा लेते थे। इन सब बातों से लालाजी जनता में अवश्य प्रसिद्ध हो गये, लेकिन राष्ट्रीय सरकारी संस्था के कर्णधारों के हृदय में अपना स्थान नहीं बना सके। एक बार जब उन्होंने पार्टी के प्रान्तीयस्तर के सर्वोच्च अधिकारी से, आगामी चुनाव में सीट प्राप्त करने के संबंध में निवेदन किया, तो उन्होंने कहा, "आप पागल तो नहीं हो गये? हमारे यहाँ के अनेक वरिष्ठ नेता जो कई बार जेल जा चुके हैं, और अभी भी जेल जाने का हौसला रखते हैं, अभी कतार में खड़े हैं। पहले उनका नम्बर तो आने दीजिए..."

लालाजी इस दुनिया में इसलिए नहीं आये थे कि वे कतार में खड़े रहें। उन्होंने राष्ट्रीय सरकारी पार्टी से इस्तीफा दे दिया और एक अन्य पार्टी में रह गये। लेकिन उनकी हालत उस सिनेमा दर्शक की हो गयी जो देर से थिएटर पहुँचते हैं और सभी जगह 'हाउस-फुल' का बोर्ड टँगा पाते हैं। तीन महीने के अन्दर, लालाजी ने तीन पार्टियाँ छोड़ीं और अन्त में अपनी एक नयी पार्टी बना ली। इस पार्टी का नाम उन्होंने गोकुल रखा। इस पार्टी का कहना था कि देश की खस्ता हालत का राज यह है कि देश में दूध और घी की कमी है। यदि जनता को दूध और घी पर्याप्त मात्रा में मिलने लगे तो अन्न समस्या चुटकियों में हल हो सकती है। लोग गेहूँ और चावल की जगह दूध और घी का आहार करेंगे तो दुश्मन भी उनसे आँख मिलाने में कतरायगा। यदि दूध और घी पर्याप्त मात्रा में मिलता रहे, तो जनता का मस्तिष्क अपने आप ही विकसित हो सकेगा और आज शिक्षा के नाम पर जो अपव्यय हो रहा है, उसे बचाया जा सकेगा।

लालाजी की इस पार्टी में, शुरू में तो संस्थापक तथा अध्यक्ष से लेकर चपरासी तक का काम स्वयं लालाजी ही करते थे, लेकिन बाद

में कितने ही दूध के व्यवसायी, दूध के प्रेमी तथा दूध देनेवाले चौपाये भी उनकी पार्टी के सदस्य हो गये। उन्होंने कई जिलों में अपनी पार्टी का प्रचार करवाया और दफ्तर खुलवाये। अब वे प्रान्त में अपने सिक्के की कीमत जानना चाहते थे। अतः उन्होंने प्रदेश की राजधानी में अधिवेशन बुलवाया। इसका काफी प्रचार किया गया था, किन्तु अधिवेशन में बहुत ही कम सदस्यों ने भाग लिया। अधिवेशन असफल होने जा रहा था कि लालाजी ने घोषणा की कि हमारा प्रमुख कार्यक्रम पशु-प्रदर्शनी है, जो कल इसी पण्डाल में लगेगी। पशु-प्रदर्शनी काफी सफल रही। उससे प्रभावित होकर कितने ही 'गोपालों' ने, 'गोकुल' में नाम लिखाया। लालाजी ने 'गोकुल' को लोकप्रिय बनाने के लिए, देशव्यापी दौरे का कार्यक्रम बनाया। उनके साथ उनके चार अन्य सहकारी भी थे, जो भगवान 'बुद्ध' के शिष्यों की तरह 'गोकुल' का कार्य कर रहे थे।

देशव्यापी दौरे के सिलसिले में, लाला घरभरनलाल को बड़े ही मजेदार अनुभव हुए। मसलन, कई स्थानोंपर जनता ने 'गोकुल' को राजनीतिक संस्था न समझ उसे कोई व्यापारी संस्थान समझ लिया और उसके लिए सैकड़ों की राशि उपलब्ध कर दी। सम्भवतः उनका यह ख्याल था कि लालाजी देश में 'आरे मिल्क' से महान कोई 'दुग्ध-संस्थान' खोलने जा रहे हैं। लालाजी ने भी जनता के भ्रम को दूर करने की आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि स्वयं उन्हें भी 'गोकुल' के कार्यक्षेत्र की साफ कल्पना न थी।

लेकिन, जैसा कि स्वाभाविक है, 'गोकुल' में भी चोर नजर आने लगे। इधर लालाजी पार्टी के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे, उधर उनके कुछ सहयोगी जो इन दिनों काफी दबंग हो चले थे, 'गोकुल' का, मक्खन चट करते जा रहे थे। लालाजी को दूर से इस बात की भनक मिलती थी, लेकिन प्रकट में वे कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। एक तो उनकी हालत सन्तों जैसी हो गयी थी। उनका काम सिर्फ उपदेश

देना रह गया था। अन्य सब कार्य उनके चेलागण किया करते थे। ये चेलागण अब काफी समृद्ध हो गये थे। एक तरह से गोकुल की चाभी इन्हीं लोगों के हाथ में थी। लालाजी चाह कर भी कुछ नहीं कर पा रहे थे, लेकिन पानी जब सर से ऊपर तक पहुँच गया तो उन्होंने अपने शिष्यों से 'गोकुल' के लिए प्राप्त रकम का व्योरा माँगा। शिष्यों ने आनाकानी कर दी। जाते-जाते यह भी कह दिया कि यदि उन्हें उनके बारे में कोई सन्देह हो, तो वे सब-के-सब 'गोकुल' से हट जायेंगे। लालाजी को पैरों के नीचे से जमीन खिसकती हुई जान पड़ी। उन्होंने मृदु स्वर में कहा, "मेरा यह मतलब नहीं था। लेकिन, तुम तो जानते ही हो कि वह धन जनता का है। जनता किसी भी दिन उसका हिसाब माँग सकती है।

शिष्यों ने आज्ञाकारी स्वर में कहा, "जनता के लिए हम अलग हिसाब बना रहे हैं, गुरुजी। आप निश्चिन्त रहें।"

लेकिन गुरुजी निश्चिन्त नहीं हो पाये। वे अन्दर ही अन्दर कुढ़ने लगे। अपने सिद्धान्त के विस्तार के लिए उन्होंने कुछ शिष्य तैयार किये थे, लेकिन वे ही शिष्य आज उनके गुरु बन गये थे। उनसे छुटकारा पाना कठिन था। उन्हें आत्मग्लानि होने लगी। किसी भी तरह आत्मशुद्धि करना आवश्यक था।

दिन बीत रहे थे और देश में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ अपने पूरे यौवन पर थीं। कोई भाषा के नाम पर, तो कोई धर्म के नाम पर आन्दोलन छेड़ रहा था। विघटनकारियों के लिए कुम्भ का पर्व आ गया था। लाला धरभरनजी ने सोचा, क्यों न इस पर्व का लाभ उठाया जाय। सहसा एक विचार उनके मस्तिष्क में कौंध गया। यदि वह विचार सफल हो सका, तो एक तीर में दो शिकार हो सकते थे।

उन्होंने अपने चारों शिष्यों को बुलवाया, उनके सामने अपना प्रस्ताव रखा, उनसे काफी देर तक मंत्रणा की और किसी तरह उन्हें वह प्रस्ताव मानने के लिए तैयार किया। फिर उन्होंने एक प्रेस-

कान्फ्रेंस बुलायी, एक वक्तव्य दिया जो शहर के प्रसिद्ध दैनिक-पत्र 'एक गाय दो सींग' में यूँ प्रकाशित हुआ—

"आज लोग अलग-अलग भाषाओं और अलग-अलग सम्प्रदायों के नाम पर अलग-अलग राज्य की माँग कर रहे हैं। ये प्रवृत्तियाँ देश को कमजोर बनाने की हैं। मैं देश की 'दुग्धमय' एकता को कायम रखने की दृष्टि से समस्त पशुओं के लिये एक अलग प्रान्त की माँग कर रहा हूँ। इस माँग के साथ ही मैं तीस दिन का अनशन प्रारम्भ कर रहा हूँ। इस बीच यदि सरकार ने मेरी बात मान ली, तो मैं सरकार के प्रति कृतज्ञ रहूँगा, अन्यथा मैं अपने को मुँह दिखाने लायक नहीं समझूँगा। इकतीसवें दिन प्रातःकाल मेरे चारों साथी जलसमाधि लेंगे, तथा उसी दिन शाम को मैं भी अपना शरीर प्राणिमात्र की सेवा के लिये अर्पित करूँगा और पानी की गोद में सो जाऊँगा।"

यह समाचार प्रकाशित होने के दूसरे ही दिन, घरभरनजी अन-अनशन करने बैठ गये। पहले सप्ताह में, वे केवल दूध पीते रहे। इस बीच उनके वजन के सम्बन्ध में कोई समाचार प्रकाशित नहीं हुआ, क्योंकि इस बीच उनका वजन घटने के बजाय दो पौंड बढ़ गया था। अगले सप्ताह वे केवल गोमूत्र पीते रहे। आश्चर्य की बात तो यह है कि समाचार-पत्रों ने घरभरनजी के अनशन पर कोई चिन्ता नहीं व्यक्त की। अलबत्ता, कुछ समाचार-पत्रों ने उनके अनशन को ले-लेकर कुछ मजेदार बातें तथा कुछ व्यंगोक्तियाँ अवश्य प्रकाशित की। तीसरे सप्ताह में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हुई। चौथे सप्ताह में एक सज्जन किसी अनशनकारी नेता की ओर से एक प्रस्ताव लेकर आये। उन्होंने घरभरनजी से बिलकुल एकान्त में कहा "हमारे नेता किशोरीजी शूकर-वध बन्द कराने के लिये आमरण अनशन कर रहे हैं। उनकी हालत चिन्ताजनक है। आप यदि उनकी कुछ सहायता कर सकें तो बड़ी कृपा होगी।"

घरभरनजी ने अनशन के कारण आयी ग्लानि को दूर हटाते हुए कहा, "लेकिन मैं तो स्वयं ही अनशन कर रहा हूँ। मैं भला आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

अभ्यागत ने रहस्य सुलझाते हुए कहा, "आप वैसे भी समस्त प्राणिमात्र के लिये अनशन कर रहे हैं। आप केवल इतना और कह दीजिये कि मैं शूकर-वध के खिलाफ अनशन कर रहा हूँ अतः किसी और को इसके लिये अनशन करने की जरूरत नहीं है। आपकी अपील सुनकर हमारे नेताजी तुरन्त अनशन त्याग देंगे। उनकी जान बच जायगी।"

"और, इससे हमारा क्या लाभ होगा?"

"हम आपके लिये अधिक से अधिक प्रचार करेंगे और यदि वैसी नौबत आ जाय—तो हम आपके समर्थन में किसी अन्य व्यक्ति को अनशन के लिये तैयार कर देंगे और आपको बचा लेंगे।"

"जैसी हरि की मर्जी।" घरभरनजी ने कहा।

और सचमुच ही, उस दिन से किशोरीजी के कार्यकर्त्ताओं ने, घरभरनजी के अनशन का जोर-शोर से प्रचार शुरू कर दिया। घरभरनजी मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे और सरकार की ओर से किसी विज्ञप्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन सरकार अन्य मामलों में उलझी हुई थी। उसे शूकरों की क्या परवाह थी? घरभरनजी के अनशन का तीसवाँ दिन उदित हुआ। किशोरीजी के कार्यकर्त्ताओं ने सीमेंट की पाँच बड़ी-बड़ी टंकियाँ बनवायी, जिनमें बैठ कर घरभरनजी तथा उनके चारों सहयोगी जलसमाधि लेने वाले थे।

घरभरनजी के अनशन का तीसवाँ दिन भी समाप्त हो गया, फिर भी सरकार की ओर से कोई विज्ञप्ति प्रकाशित नहीं हुई। इकतीसवें दिन सुबह, निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार, भगवान् सूर्य तथा सौ-पचास दर्शनार्थियों को साक्षी बनाकर, घरभरनजी के चारों सहयोगी टंकियों में बैठ गये। आखिरी क्षण तक वे सरकारी विज्ञप्ति की प्रतीक्षा करते रहे और अन्त में पानी की भेंट चढ़ गये।

मैं तत्काल घरभरनजी के पास पहुँचा। वे काफी दुर्बल हो गये थे और काफी थक गये थे। लेकिन उनके मस्तिष्क पर का तनाव काफी ढीला मालूम हो रहा था। मैंने सहानुभूति के स्वर में कहा, "मुझे आपके सहयोगियों के लिए हार्दिक सहानुभूति है। उन्होंने प्राणिमात्र के लिए जो बलिदान किया है, उससे कभी-न-कभी सरकार की आँखें अवश्य खुलेंगी······"

घरभरनजी ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा, "नहीं मित्र! मुझे सरकार की ओर से न पहले ही कोई उम्मीद थी, और न अब है! हाँ, ईश्वर किसी न किसी रूप में अवश्य सहायता करता है। लोग सारा जीवन सुख की खोज में भटकते रहते हैं, लेकिन मुझे बैठे-बिठाए सुख की प्राप्ति हो गयी है। मैं बलिदान में विश्वास करता हूँ, लेकिन अपने बलिदान में नहीं। आज पहली बार मैं मुक्ति की साँस ले रहा हूँ। जाओ, शीघ्र ही दो सेर दूध ले आओ। मैं बहुत भूखा हूँ और अनशन तोड़ना चाहता हूँ!"

मैंने हँसकर कहा, "इतनी भी क्या बेसब्री, मेरे यार! दो सेर दूध पीने से, तो तुम इस लोक को छोड़कर चले जाओगे। अनशन तोड़ने के लिए तो एक नीबू का रस भी काफी है!"



इन्द्र की चन्द्रदशा

रत्नजटित सिंहासन पर लेटे-लेटे, भगवान् इन्द्र नींद की खुमारी मिटा रहे थे। उनके चारों ओर अप्सराएँ खड़ी थीं। प्रत्येक अप्सरा हर संभव प्रयास से भगवान् इन्द्र को प्रसन्न करने की चेष्टा कर रही थी। कोई उन्हें अपने नयनों की मदिरा से बेहोश कर रही थी तो कोई सचमुच की मदिरा से उनके होश गायब कर रही थी। इन्द्र भगवान् के साथ, उनकी पत्नी शची भी बैठी हुई थीं और अपने पति का वह वैभव बड़े गर्व और कौतूहल से देख रही थीं। भगवान् इन्द्र रूप और मदिरा के सागर में डूबते-उतराते हुए अप्सराओं को अपने कारनामें सुना रहे थे और ऐवज में हंसी की किलकारियाँ सुन रहे थे।

आमोद-प्रमोद का वह नशीला वातावरण अपने सम्पूर्ण यौवन पर था कि इतने में कहीं से 'नारायण-नारायण' की धुन सुनायी पड़ी। नारदजी अवतीर्ण हुए। उन्हें देखते ही, अप्सराएँ ध्यानमुद्रा में नत हो गयीं! इन्द्र भगवान् अपनी पत्नी के साथ उठ खड़े हुए और बोले, "प्रणाम स्वीकार हो, देवर्षिजी!"

देवर्षि ने मन्द-मन्द मुस्कान के साथ प्रणाम स्वीकार किया। फिर व्यंग्योक्ति भरे स्वर में बोले, "तो आज सुबह-सुबह ही आमोद-प्रमोद शुरू कर दिया, देवराज!"

व्यंग्योक्ति का उत्तर शची ने दिया। बोलीं, "पतिदेव सारी रात स्वर्ग की पंचवार्षिक योजना के सम्बन्ध में विचार करते रहे··· इसीलिए···"

"हूँ ! पंचवार्षिक योजना को अब चूल्हे में डालिये, देवीजी—और जरा स्वर्ग के वातायन में से मृत्यु लोक की ओर झांकिये !"

भावी संकट की आशंका से इन्द्र का रोम-रोम सिहर उठा। शची-रानी पतिदेव के और भी निकट आ गयीं और कम्पित स्वर में बोलीं, "यही किसी नये संकट की सूचना है या..."

"संकट ही समझ लो, देवी ! मृत्यु-लोक में नित्य नये होनेवाले अविष्कार स्वर्ग लोक के लिए संकट ही तो हैं !" नारदजी ने थकान मिटाने के उद्देश्य से अपनी चुटिया खोली और फिर उसे आहिस्ता-आहिस्ता बाँधने लगे।

इन्द्र भगवान् ने सिंहासन का एक छोर हाथ से कस कर पकड़ लिया और दीन स्वर में कहा, "इस बार इन्द्रासन पर तो कोई संकट नहीं है, न ?" नारदजी ने उन्मुक्त हास्य का स्रोत आरम्भ करते हुए कहा, "आपके इन्द्रासन को अब पूछता कौन है, महाराज ? मृत्युलोक वाले, यदि आपके इन्द्रासन को यहाँ से ले भी जायं तो भी वह वहां गुदड़ी बाजार में कौड़ियों के मोल नहीं बिकेगा ! मानव तो अब चांद-पर पैर रखने जा रहा है—"

"क्या ?" इन्द्र ने सिंहासनपर करीब-करीब उछलकर कहा, "यह असंभव है—असंभव है !"

"आप के लिए चांदपर जाना असंभव हो सकता है देव, लेकिन मानव ने चन्द्रलोकपर पहुँचने की तैयारियाँ पूरी कर ली हैं। मैंने, मृत्यु-लोक में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएं पढ़ीं हैं। संभव है, कल तक मानव के चरण चांद पर पड़ जायं !"

"लेकिन मानव-मस्तिष्क में चन्द्रयात्रा की कल्पना आयी कैसे ? मैं बृहस्पतिजी से इस विषय में बातें करूंगा। लगता है, उनका विभाग इन दिनों ठीक ढंग से कार्य नहीं कर रहा है !"

"बृहस्पतिजी को दोष देने से क्या होगा, देवाधिदेव ? असली गलती तो तभी हुई जब व्यासजी ने पुराणों का प्रणयन प्रारम्भ कर दिया था। मैंने तभी जान लिया था कि व्यासजी की कल्पना एक दिन स्वर्गलोक को ही ले डूबेगी।"

"मैं समझी नहीं!" शचीरानी ने निष्कपट भाव से कहा।

"व्यासजी ने कल्पना के सागर में डूबकर, चन्द्रलोक आदि का सविस्तार, वर्णन जो किया था।" नारदजी ने कहा, "उसीके आधार पर, मानव ने चन्द्रलोक पर पहुँचने की तैयारी कर ली। भारतवासी तो आज भी कहते हैं कि जर्मनी, अमेरिका आदि देशों ने विज्ञान के क्षेत्र में, जो प्रगति की है, उसका आधार वेद-पुराण ही हैं!"

"भारतवासी सचमुच धन्य हैं—उन्होंने हमारी प्रतिष्ठा बना रखी है।" सुश्री शचीरानी ने कहा।

"लेकिन प्रत्येक मानव, भारतवासी नहीं है। आपने यदि इसी क्षण कोई विचार नहीं किया तो मानव स्वर्गलोक में भी घुस आयेगा और हमारी सबकी नींद हराम कर देगा!"

भगवान् इन्द्र सोच में पड़ गये। शचीरानी पति को ध्यानमग्न देख, वहाँ से खिसक गयीं। नारदजी तानपुरे पर उँगलियाँ फेरने लगे। इतने में आकाश मार्ग से एक चीख सुनाई पड़ी और चन्द्रमा वहाँ आ पहुँचे। वहाँ का वातावरण अत्यन्त शीतल था, फिर भी वे पसीने से लथपथ थे। उनका सारा शरीर पसीने से काँप रहा था। "महाराज—"

इन्द्र भगवान् का ध्यान टूटा। "आप यहाँ कैसे ?"

चन्द्रमा ने कहा, "राहू और केतु मेरा पीछा कर रहे हैं।"

"राहू और केतु ? इस समय ?" इन्द्र भगवान् ने आश्चर्य से पूछा।

नारदजी, जो अब तक तानपुरेपर उँगलियाँ फेर रहे थे, अब जमकर बैठ गये और ठहाका लगाकर बोले, "लगता है, चद्रमा की बुद्धि कुंठित हो गयी है। सम्भवतः अत्यधिक शीतलता का यह प्रभाव है!"

"मुझे बचा लीजिये, देव..." चन्द्रमा असहाय दृष्टि से, कभी इन्द्र की ओर तो कभी नारदजी की ओर देख रहे थे।

नारदजी ने रहस्य खोलते हुए कहा, "मैंने आपसे पहले ही कहा था, देव! यह राहु और केतु नहीं, बल्कि मानव-निर्मित अन्तरिक्ष यान हैं, जो बड़ी तीव्रगति से चन्द्रमा की ओर बढ़ रहे हैं। उनमें से एक यान में तीन आदमी हैं तथा दूसरा मानव-रहित है। उनमें से एक तो थोड़े ही समय में चन्द्रमा की धुरी में परिक्रमा करना प्रारम्भ कर देगा।"

चन्द्रमा के सरपर से मानों एक बोझ कम हो गया। लेकिन फिर, एक नयी चिन्ता ने उन्हें धर-दबोचा। "तो क्या, वे चन्द्रलोक की सैर करने आये हैं?"

"जी नहीं! सैर करने के लिए क्या मृत्युलोक में जगह की कमी है? वे तो चन्द्रलोक पर अधिकार करने आये हैं। जो मानव चन्द्रलोक पर पहली बार पैर रखेगा, वह सबसे पहले वहाँ अपने देश का झण्डा गाड़ देगा।"

"तो इससे क्या हुआ? हम उनका झण्डा उखाड़कर फेंक देंगे!" चन्द्रमा ने उतावले स्वर में कहा।

नारदजी ने पुनः जोर का ठहाका लगाया और बोले, "आपका अज्ञान अपनी पराकाष्ठापर पहुँच रहा है, चन्द्रमाजी। आप शायद नहीं जानते कि पृथ्वी से चन्द्रमा की ओर ढाई लाख मील की यात्रा करनेवाले अन्तरिक्षयान का संचालन पृथ्वी पर से हो रहा है। चन्द्रलोक में होनेवाली प्रत्येक हलचल का पता पृथ्वी पर के संचालन-केन्द्र में लिखा जा रहा है! आपने यदि कोई मूर्खतापूर्ण कार्य किया, तो हम सबको सारा जीवन मृत्युलोक के किसी कारागृह में व्यतीत करना पड़ेगा..."

"तो मैं क्या करूँ?" चन्द्रमा ने इन्द्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा, "मैं तो ऐसी हालत में वहाँ नहीं जा सकूँगा!"

आप चिन्ता न करें !" नारदजी ने चन्द्रमा को आश्वस्त करते हुए कहा, "भगवान् इन्द्र के रहते, आपपर जरा भी आँच नहीं आ सकती। आप कुछ दिनों तक इन्द्र भगवान् का आतिथ्य स्वीकार करें। इस बीच, भगवान् इन्द्र चन्द्रलोक पर आया हुआ संकट दूर कर देंगे। क्यों ठीक है न भगवन् !" नारदजी इन्द्र की ओर देखकर मुस्कराये।

चन्द्रमा के समक्ष, अपनी प्रशंसा में कहे गये शब्द सुनकर, भगवान् इन्द्र का प्रसन्नता से फूल उठना स्वाभाविक था। किन्तु भावी संकट की आशंका से उनका रोम-रोम काँप उठा। फिर भी, उन्होंने चन्द्रमा से कहा, "आप शयनकक्ष में विश्राम करें, देव ! आपका संकट अब मेरा संकट है, मैं स्वयं ही उसे दूर करूँगा–"

चन्द्रमा के, वहाँ से चले जाने के बाद इन्द्र ने नारदजी से पूछा, "मानव के उस यान का आकार-प्रकार कैसा है, देवर्षिजी ?"

उसके आकार-प्रकार का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। इसीलिए मैं यह पत्रिका ले आया हूँ। इसमें सभी बातों की जानकारी दी गयी है। संक्षेप में, मैं यही कह सकता हूँ कि उक्त यान स्वचालित है—अर्थात् चालक का संहार करने से यान की गति में कोई अन्तर नहीं आ सकता।'

भगवान् इन्द्र कुछ देर तक, नारदजी की दी हुई पत्रिका के पन्ने उलटते रहे। फिर एकाएक, कुछ योजना बनाकर बोले, "मैंने निर्णय-कर लिया है, देवर्षिजी।"

"कैसा निर्णय ?"

"यही कि हमें इस संकट का सामना युद्ध-स्तर पर करना होगा। आप मृत्युलोक में जाकर प्रचार कार्य करेंगे और मैं—आकाशीय युद्ध का संचालन करूँगा।" इन्द्र ने निर्णय दिया।

"तो क्या, मुझे मृत्युलोक में आपके आकाशीय युद्ध का प्रचार करना होगा ?" नारदजी ने शंका प्रस्तुत की।

"आप ही तो कहा करते थे कि युद्ध में असत्य ही सबसे बड़ा सत्य होता है। वही सबसे बड़ा धर्म होता है। आपका कार्य होगा, मृत्युलोक में मानव की चन्द्रमा यात्रा के सम्बन्ध में तरह-तरह की भ्राँतियाँ फैलाना। भारतवर्ष इस कार्य के लिए सर्वोत्तम स्थान होगा।"

"आप बार-बार, मुझे मिथ्याभाषण करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। लेकिन कोई बात नहीं। जब प्राणों पर आ पड़ी हो तो सत्य और मिथ्या का विचार ही असंगत है।"

नारदजी मृत्युलोक की ओर चल पड़े और भारतवर्ष के एक नगर में जा पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचने तक, मानवनिर्मित यान के चन्द्रमा तक पहुँचने की खबर विश्व के कोने-कोने में पहुँच चुकी थी। एक विशाल काफी हाउस में, लोग रेडियो पर मानव के चन्द्रारोहण का आँखों देखा हाल सुन रहे थे और मानव की इस विजय पर खुशियाँ मना रहे थे। चन्द्रयान के सम्बन्ध में नित्य ही अनेक समाचार प्रकाशित हो रहे थे और भारतवर्ष के समाचार पत्रों में मनोरंजक बातें आ रही थीं। एक समाचार था—'चन्द्रतल पर एक गति-विधि देखी गयी। यह तेज चमक थी, जो पाँच सेकेण्ड तक थी।' नारदजी की प्रतिभा से प्रभावित, भारत के मनीषियों ने उक्त समाचार पर अपना मत इन शब्दों में व्यक्त किया—"वह तेज चमक ही देवत्व था, जो चन्द्रमा को त्यागकर चला गया। चन्द्रमा से देव और पितरों का तेजपुंज निकल गया, अतः उनकी पूजा नहीं हो सकती।"

एक तथाकथित वैज्ञानिक ने तो, चन्द्रमा को नवग्रहों की पूजा से ही वंचित कर दिया, क्योंकि उनके अनुसार दो-दो मानवों की चरण-धूलि से चन्द्रमा अपवित्र हो गये थे। नारदजी ने तो इस समाचार को खूब उठाया। जगह-जगह सभाएँ तथा विचार गोष्ठियाँ आयोजित होने लगीं और तर्क-कुतर्क प्रस्तुत किये जाने लगे। एक विद्वान् ने उपर्युक्त वैज्ञानिक की भर्त्सना करते हुए कहा कि मानव के पैर रखने मात्र से ही कोई अपवित्र नहीं होता और उसकी पूजा बन्द नहीं होती।

रावण ने नवग्रहों को अपने यहाँ सीढ़ियों पर उल्टा कर के बाँध रखा था और खुद उनके ऊपर से आता-जाता था। एक दिन नारदजी वहाँ आये। उन्होंने नवग्रहों की वह हालत देख कर शनिदेव से पूछा, "महाराज, आपके रहते यह सब क्या हो रहा है?" उन्होंने कहा कि मैं तो यहाँ उल्टा बँधा पड़ा हूँ, अतः ऊपर नहीं देख सकता। तब नारदजी रावण के पास पहुँचे और उनसे कहा कि शत्रु की पीठ पर पैर रखना वीरों को शोभा नहीं देता। रावण ने बात मान ली और नवग्रहों को सीधा लिटाने को कहा। अब, रावण जब उन पर पैर रखकर चलने लगे तो उनकी दृष्टि शनिदेव पर पड़ी। इसके बाद ही, रावण ने अशोक वाटिका नष्ट होने की तथा अक्षयकुमार के मारे जाने की खबर सुनी...

नारदजी का प्रचारकार्य बड़े ही सुनियोजित ढंग से चल रहा था। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कह डाला कि जो मानव चन्द्रमा पर पहुँचने का दावा करते हैं, वे वास्तव में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब तक ही पहुँच पाये हैं। चन्द्रलोक तो सूर्यलोक से आठ लोक ऊपर है, अतः चन्द्रदेव के अपवित्र होने का प्रश्न ही नहीं उठता...।

मृत्युलोक में अपने कार्य से नारदजी मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। उनका विचार था कि मृत्युलोक में भ्रान्तियाँ फैलाने के कार्य में, उन्हें काफी परिश्रम करना पड़ेगा लेकिन यहाँ के लोग तो जन्मतः ही बुद्धिमान् थे। नारदजी जितना कुछ सोचते थे, यहाँ के लोग उससे एक कदम आगे रहते थे।

मृत्युलोक में अब नारदजी का कार्य समाप्त हो चुका था। उन्हें अब स्वर्ग की चिन्ता सताने लगी। यह तो निश्चित है, कि भगवान् इन्द्र अपने कार्य में विफल सिद्ध हुए हैं, लेकिन फिर भी वे डींग हाँकने से बाज नहीं आयेंगे। खैर, चलकर देख ही लिया जाय। नारदजी ने स्वर्ग का ध्यान किया और दूसरे ही क्षण स्वर्ग की पावन भूमि पर अवतरित हुए। स्वर्ग वैसा ही सुन्दर था, जैसा वे उसे छोड़ गये थे। अन्तर केवल इतना था कि स्वर्ग के राजा साहब स्वर्ग से नदारद थे।

तो क्या, इन्द्र भगवान् अभी चन्द्रलोक से वापस नहीं आये ? नारदजी इन्द्र भगवान् का हाल जानने के लिए तुरन्त ध्यानमग्न हो गये। अन्तर्ज्ञान के परदे एक-एक कर खुलते चले गये और नारदजी को एक अजीबसा दृश्य दिखाई दिया। इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। चन्द्रलोक के चारों ओर इन्द्र और गरुड़ अत्यन्त तीव्र गति से परिक्रमा कर रहे थे। क्षण भर के लिए नारदजी के चेहरे पर विचारों का जाल बुन गया—"तो यह मानवनिर्मित अन्तरिक्षयान का ही चमत्कार है, जिसने चन्द्रलोक की ओर बढ़ते समय गरुड़ को ऐसा झटका दिया कि सवारी और सवार दोनों अलग-अलग चक्कर लगाते दिखाई दे रहे हैं।"

नारदजी के मुख-मण्डल पर अब सात्विक प्रसन्नता खिल उठी थी। अहंकारी को इतना दण्ड पर्याप्त है। लेकिन उनका काम पक्का रहा। मानव सचमुच ही चन्द्रमा तक नहीं पहुँच पाया, क्योंकि जब वह चन्द्रलोक पर पहुँचा, उस समय चन्द्रमा जी वहाँ से नदारद थे !



अन्तरात्मा की आवाज

एक दिन परमपिता परमेश्वर ने, समस्त प्राणिमात्र के कल्याण के लिए आदेश दिया—"अन्तरात्मा की आवाज !"

उसी क्षण से, पृथ्वीपर अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए—

१. बम्बई का मशहूर फिल्मी हीरो सर्वदानन्द अपनी नई फिल्म की नई हिरोइन के साथ, प्रेम का नाटक कर रहा था। यूँ तो वह फिल्मों के बाहर भी प्रेम का नाटक ही करता था, लेकिन इस समय वह स्टूडियों में था, और अगले सीन में 'टेक' के लिए हिरोइन के साथ इश्क लड़ा रहा था। उनका 'इश्क' 'टेक' की हालत में था, तभी एक फिल्म प्रोड्यूसर उन दोनों के बीच संकट बनकर उपस्थित हो गया। हीरो ने उसकी ओर यूँ देखा, गोया किसी विलन से आँखें मिला रहा हो! प्रोड्यूसर ने 'एग्रिमेन्ट फार्म' हीरो की ओर बढ़ाते हुए कहा, "अपनी आगामी फिल्म के लिए आप से एग्रिमेन्ट कराना चाहता हूँ।" सर्वदानन्द ने नाकपर कब से उड़नेवाली मक्खी को दूर झटकते हुए कहा, "अभी दस लाख का मूड है। कहिये तो दस्तखत कर दूँ।"

इतनी लम्बी रकम सुनकर, प्रोड्यूसर के होश फाख्ता हो गये। वह चुपचाप वहाँ से खिसक गया। लेकिन, अगली बार जब वह पुनः उसी हीरो के पास पहुँचा, उस समय वह पूरी तरह से तैयार होकर चला था। इस बीच, उसने अपनी छोटी-मोटी फिल्मों से काफी माया बटोर ली थी। जब वह एक फिल्म-स्टूडियों में उसी हीरो से मिलने

पहुँचा, उस समय हीरो अपनी नई फिल्म के लिए, बिलकुल नई तलाश की हुई अभिनेत्री के साथ, प्यार के सीन का रिहर्सल कर रहा था। प्रोड्यूसर पुनः एक बार हीरो और हीरोइन के बीच व्यवधान बन कर उपस्थित हो गया। हीरो ने उसकी ओर यूँ देखा, जैसे वह उसे पहले राउण्ड में परास्त कर चुका हो, और अब कोई नया दाँव खोज रहा हो। प्रोड्यूसर ने कहा, "आपने पिछली बार दस लाख कहा था, सो ले आया हूँ।"

सदाबहार हीरो सर्वदानन्द ने मुलायम स्वर में कहा, "बारह लाख!"

"लेकिन पिछली बार, तो आपने दस लाख के मूड की बात कही थी!"

"हाँ!" हीरो ने शान्त स्वर में कहा, वह मूड की बात थी, यह अन्तरात्मा की आवाज है—जो कभी नहीं बदलती!"

२. एक तपे-तपाये नेताजी को राजनीति से निवृत्त कराने के लिए एक महती सभा का आयोजन हुआ था। नेताजी की यह अन्तिम राजनीतिक सभा थी। उनके चेलों ने, उन्हें राजनीति से निवृत्त होने के लिए राजी कर लिया था, क्योंकि इतना निश्चित था कि जब तक नेताजी निवृत्त नहीं होते, तब तक उनका भविष्य अनिश्चित था। नेताजी के सबसे अधिक चहेते चेला ने, जनता को सम्बोधित करते हुए कहा, "आज हम सब, नेताजी को राजनीति से बिदा करने आये हैं। नेताजी ने जनता की कितनी सेवा की, यह कहना शब्दों का अपव्यय करना है। आज की सभा की इतनी अधिक उपस्थिति ही. इस बात का सबूत है कि नेताजी ने जनता के लिए क्या कुछ किया। उन्होंने राजनीति के दल-दल में रहते हुए भी राजनीति का स्तर ऊँचा उठाया। सर्वसाधारण नेता जब राजनीति में प्रवेश करता है, तो उसके सामने अनेक प्रलोभन रहते हैं। लेकिन उसकी हालत अन्त में वही होती है, जो दल-दल में फँसे व्यक्ति की होती है। लेकिन, जो केवल निःस्वार्थ-भाव से राजनीति में प्रवेश करता है, वह दल-दल में भी कमल की तरह खिला रहता है!"

उत्तर में, नेताजी ने कहा, "कुछ लोगों का यह ख्याल है कि पार्टी में मेरी साख कम हो जाने से, तथा लोकसभा के चुनाव में दुबारा हार जाने के कारण ही, मैं राजनीति से संन्यास ले रहा हूँ। लेकिन, वास्तविकता यह है कि मैंने आज तक अपने सिद्धान्तों के लिए संघर्ष किया है। सिद्धान्तों के आगे, मैंने व्यक्ति की कभी भी परवाह नहीं की। अगर की होती, तो आज मैं यहाँ नहीं दिल्ली में होता—"

तालियों की गड़गड़ाहट के साथ, सभा समाप्त हुई, तो लगा जैसे राजनीति के आकाश से एक सितारा टूट कर गिर पड़ा हो—।

लेकिन कुछ ही दिनों के बाद, जब देश के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद के लिए चुनाव होने वाला था, तो नेताजी की रगों में राजनीतिक खून खौलने लगा। उन्होंने तत्काल पत्रकार सम्मेलन बुलाया और चुनाव में खड़ा होने की घोषणा कर दी। कुछ पत्रकारों ने, नेताजी की इस घोषणा का स्वागत किया, तो कुछ ने उन्हें पहले से बधाइयाँ भी दे डालीं। लेकिन, एक पत्रकार ने नेताजी से सीधा सवाल किया, "लेकिन, आपने तो राजनीति से संन्यास ले लेने की घोषणा की थी?"

नेताजी ने समर्थन में सिर हिला कर कहा, "ठीक है! मैं खुद भी इस बवाल में नहीं फँसना चाहता था, लेकिन इतने जिम्मेदारी के पद पर, जब तक मेरे जैसा निःस्वार्थ आदमी नहीं चुना जाता, तब तक वह पद प्रतिष्ठा का साधन नहीं बन सकता।"

उक्त पत्रकार ने पुनः पूछा, "क्या आप किसी पार्टी के निर्देश पर कार्य कर रहे हैं?"

"नहीं! मैं किसी पार्टी के निर्देश पर काम नहीं करता। मेरी अन्तरात्मा ने मुझसे कहा कि मैं चुनाव में खड़ा होऊँ और विजय प्राप्त करूँ। और, आप तो जानते ही हैं कि मेरी अन्तरात्मा की आवाज कभी झूट नहीं बोलती।"

३. सेवानिवृत्त होनेवाले एक प्राध्यापक ने विद्यार्थियों से विदा होते समय, अश्रुपूरित नेत्रों से कहा, "विद्यार्थियों से बिछुड़ते समय

मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। विद्यार्थी समाज, आज सबसे अधिक उपेक्षित है। लेकिन उनकी इस उपेक्षा का कारण और कोई नहीं, हम स्वयं हैं। हम शिक्षकगण, एक ओर तो विद्यार्थियों में दिनोंदिन बढ़ती हुई हिंस्र मनोवृत्ति की आलोचना करते हैं, तो दूसरी ओर अपने ही स्वार्थ के हेतु विद्यार्थियों के एक समुदाय की सहायता लेते हैं। कौन जानता है, कि हम जिस अस्त्र का उपयोग दूसरों के विनाश के लिए करते हैं, वह कल हमारे ही ऊपर नहीं उलटेगा ?"

उन्होंने आगे कहा, 'मैं जानता हूँ कि आज का शिक्षक अपने मुख्य कार्य की अपेक्षा अतिरिक्त आय देनेवाले अन्य क़ार्यों में विशेष दिलचस्पी रखता है। शिक्षक जब खुद ही गुमराह हो जाय, तो वह विद्यार्थियों को सही रास्ता कैसे दिखला सकता है ? शिक्षा के सम्बन्ध में कितने ही सुधार आयोग क्यों न आयें, जब तक शिक्षक अपनी अन्तरात्मा की आवाज' नहीं सुनेगा, तब तक शिक्षा की उन्नति नहीं हो सकेगी ?"

४. अट्ठाईस तारीख की रात, मैं भगवान् बुद्ध की जीवनी पढ़ते-पढ़ते सो गया। सुबह-सुबह पत्नी से आर्थिक विषयों पर मतभेद हो जाने के कारण मूड आफ था। तिस पर बुद्ध की जीवनी ने उदासी और भी बढ़ा दी। लगा कि सब कुछ व्यर्थ है और उदासी ही सब कुछ है। पत्नी, बच्चे, नौकरी, प्रमोशन सब कुछ व्यर्थ लगने लगा। सुबह-सवेरे, जब घर में सब लोग सो रहे थे, मैं घर से बाहर हो लिया। सुबह की ताजी हवा फेफड़ों में घुसते ही, मेरी उदासी कम होने लगी। जेब में दस रुपये की आखिरी नोट थी। एक अच्छे से होटल में जाकर चाय-नाश्ता किया और अपने को तरोताजा महसूस किया। मैं कितने ही दिनों से, घर में सुबह के नाश्ते का प्लान बनाता आया था, लेकिन बजट ने कभी यह गवारा नहीं किया कि भोजन के आगे नाश्ते की भी कोई जरूरत हो। सुबह-सुबह घर का ख्याल आना कायरता की निशानी थी, इसलिए मैंने सुबह-सुबह अंग्रेजी पिक्चर देखने का इरादा किया और उस दिशा में अग्रसर हुआ।

शाम होते-होते, मेरा मन भर गया था और जेब खाली थी। अपने-आप ही मेरे पैर घर की ओर बढ़ने लगे। अब, जैसे ही मुझे घर का ख्याल आया, तो मुझे घबराहट होने लगी। सुबह से मुझे गायब देख पत्नी और बच्चे घबरा गये होंगे। मेरी आँखों के सामने वुद्ध की पत्नी दिखाई देने लगी। हो सकता है कि वे सब मेरी खोज कर रहे हों और आखिर हार कर पुलिस में इत्तिला करने पहुँचे हों।

चोर की तरह, घर में प्रवेश किया। सोच रहा था, कि पत्नी के अलावा, बच्चे मुझसे लिपट पड़ेंगे और रो पड़ेंगे। शायद, मैं भी रो पड़ूं। इस ख्याल से आँखों में आँसू आ गये।

तभी, सामने पत्नी दिखाई पड़ी। मुझे देखते ही बोली "चलो अच्छा हुआ, तुम आ गये। मेरी एक चिन्ता कम हो गयी।"

मैंने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, "जानती हो, मैं कहा था ?"

"गये होंगे, अपने किसी दोस्त के घर ताश खेलने। मैं क्या जानती नहीं ? जेब खाली हो गयीं, इसलिए अब घर आ गये हो।"

"देखो, राधा, मैं सच-सच कह रहा हूँ। जूआ खेलने के अलावा मैं और कुछ भी कर सकता हूँ।"

"तो ठीक है।" राधा ने आँख दबाकर कहा, "मैं बच्चों को लेकर पिक्चर जा रही हूँ। तुम तब तक खाना बना लेना।"

"क्या इसे आदेश समझा जाय ?"

"आदेश नहीं—यह मेरी अन्तरात्मा की आवाज है। मेरे लिए क्या इतना भी नहीं करोगे ?"

बापू जन्मशती

स्वर्ग के एक आँगन में बापू सूत कात रहे थे। उनकी काया कृश थी, किन्तु उनकी आँखों से जो ज्योति निकल रही थी, उससे स्वर्ग का कोना-कोना प्रकाशित हो रहा था। तभी, स्वर्ग में ताजादम पहुँचे हुए एक पत्रकार ने बापू से कहा,—"अपनी जन्मशताब्दी देखने नहीं चलोगे, बापू ?"

बापू के दुबले-पतले शरीर में हलका सा स्पन्दन हुआ। उन्होंने पत्रकार की ओर आश्चर्यभरी दृष्टि से देखा—जैसे पूछ रहे हों—"क्या एक शताब्दी पूरी हो गयी ?"

पत्रकार ने दुबारा पूछा, "अपनी जन्मशताब्दी देखने नहीं चलोगे, बापू ?"

बापू की आँखों में प्रसन्नता की चमक दिखाई देने लगी। जिस देश में जन्म लिया, जिसे अपनी कर्मभूमि बनाया और जहाँ राम का नाम लेकर भौतिक शरीर विसर्जित कर दिया, उस देश को देखने की लालसा होना स्वाभाविक ही था।

पत्रकार ने देखा, एक छाया खड़ी हो गयी है और उसके साथ-साथ चलने लगी है।

उस छायारूपी बापू ने पत्रकार से पूछा, "पहिले कहाँ चलेंगे, भाई ?"

"जहाँ आप कहें। वैसे, पूरे भारतवर्ष में आपकी जन्मशताब्दी समान उत्साह से मनायी जा रही है। देखिये न, तमाम दीवारों पर आपके पोस्टर लगे हुए हैं। आपके सुभाषित लिखे हुए हैं।"

बापू अपने एक पोस्टर की ओर कौतूहलभरी दृष्टि से देखने लगे थे, तभी एक राह चलते युवक ने उनसे कहा, "लाटरी का टिकट खरीदेंगे ?"

"कैसी लाटरी ?" बापू ने पत्रकार की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा।

"आपके नाम से लाटरी चल रही है। एक-एक रुपये का टिकट है। जिसका नम्बर आएगा उसे पाँच लाख का इनाम मिलेगा।"

"और जिसकी लाटरी नहीं खुलेगी उसे क्या मिलेगा ?" बापू ने पूछा।

"उसे ? उसे बापू का फोटो मिलेगा"—पत्रकार ने हँस कर कहा, "देखते नहीं हैं, टिकट पर आपकी फोटो छपी है ?"

"लेकिन मैंने अपने जीवनभर जुए का विरोध किया था।" बापू ने दलील पेश की।

"आपका जीवन भी तो एक प्रकार का जुआ ही था। आपका आन्दोलन, अनशन एक प्रकार का जुआ नहीं तो और क्या था ? और अन्त में तो आपका जीवन भी दाँव पर लग गया था।"

"लेकिन वह जुआ अच्छे कार्य के लिए था। उसके पीछे सात्विक उद्देश्य था।" बापू ने पत्रकार को निरुत्तर करना चाहा।

"तो इसके पीछे भी उद्देश्य है। इनाम देने के बाद जो रकम बचेगी उसका एक हिस्सा आपके नाम से अस्पताल बनाने में खर्च होगा।" पत्रकार शायद हार न मानने की कसम खाकर चला था।

"तुम कुछ भी कहो···लेकिन···खैर, कहीं भी चलो।

पत्रकार बापू को एक ऐसे शहर में ले गया, जहाँ हाल ही में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया था। शहर में आतंक छाया हुआ था।

हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे और अखबार वाले भड़कीले शब्दों में सन्देह की आग बढ़ा रहे थे। बापू ने पूछा, "तुम तो कह रहे थे कि यहाँ गाँधी शताब्दी मनायी जा रही है—लेकिन मेरा ख्याल है, अभी मेरा कार्य पूरा नहीं हुआ है। यदि मैं जीवित होता, तो अभी इसके खिलाफ अनशन करता।"

पत्रकार ठहाका मारकर हँसने लगा। बोला, "बापू, आपने तो अनशन का एक ही पाठ पढ़ाया था, लेकिन आपके जाने के बाद यहाँ अनशन के कई कोर्स शुरू किये गये हैं।"

"अनशन के कोर्स ? तुम शायद मेरा मजाक उड़ा रहे हो ?"

"मजाक मैं नहीं उड़ा रहा हूँ, बापू ! मजाक तो ये तुम्हारे लोग तुम्हारा उड़ा रहे हैं।" कहकर, पत्रकार बापू को एक शामियाने में ले गया जहाँ कुछ नेता विभिन्न मुद्राओं में बैठे अनशन कर रहे थे।"

"तो क्या इसी स्कूल में 'अनशन' का कोर्स पढ़ाया जाता है ? मेरी तो समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है।"

"इसमें, समझने की क्या बात है ?" पत्रकार ने कहा, "ये लोग 'रिले' अनशन कर रहे हैं।"

"क्या अब 'अनशन' भी 'रिले' होता है ? हमारे समय में तो 'अनशन' के 'बुलेटिन' प्रकाशित होते थे। "बापू ने कहा, "लेकिन, यहाँ 'रिले' करने की सामग्री तो नहीं दिखाई दे रही है ?"

पत्रकार ने हँसकर कहा, " 'रिले अनशन', अनशन का ही एक प्रकार होता है। पहले एक आदमी अनशन प्रारम्भ करता है। कुछ घण्टे अनशन करने के बाद, उसका स्थान दूसरा नेता लेता है, और इस प्रकार अखण्ड अनशन चलता रहता है।"

"लेकिन इसका क्या सबूत है, कि जो नेता अनशन से उठ कर चला जाता है, वह दुबारा खाना नहीं खायेगा।"

पत्रकार ने मार्मिक हँसी का आविष्कार करते हुए कहा, "यह आपके जमाने का अनशन नहीं है, बापू ! यह महज अनशन है ! इसमें 'अनशन' के भावनात्मक रूप को ही स्वीकार किया गया है।"

"मैंने तो आगा खाँ पैलेस में इक्कीस दिन का अखण्ड अनशन किया था। बापू ने कहा।

"सिर्फ इक्कीस दिन ?" पत्रकार ने क्षुद्र स्वर में कहा, "मैं आपको एक ऐसी विभूति के दर्शन कराऊँगा, जो लगातार साठ दिनों से अनशन कर रहे हैं, और अभीतक जिन्दा हैं।"

"मैं अवश्य उनका दर्शन करना चाहूँगा।"

साठ दिन अनशन करने वाली विभूति का दर्शन करने के बाद बापू को लगा, जैसे उनका सारा जीवन व्यर्थ चला गया। उन्होंने सोचा, कि अगर एक बार फिर मौका मिला, तो मैं इस विभूति को जरूर मात दे दूँगा।

इतने में, पत्रकार ने कहा, "चलिये, अब दिल्ली चला जाय।" दिल्ली का नाम सुनते ही बापू के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये।

दिल्ली की सड़कों पर उस दिन काफी चहल-पहल थी। मालूम हुआ कि सीमान्त गाँधी आने वाले हैं, और शाम को उनका नागरिक अभिनन्दन होने वाला है। बापू ने पत्रकार से कहा, "मैं जरूर मिलूँगा, बाचा खाँ से। उन्होंने मेरे साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया है।"

पत्रकार ने कहा, "लेकिन आपको वह पहचान भी पायेंगे ?"

"क्यों नहीं ? क्या मैं इतना बदल गया हूँ ?"

बाचा खाँ नागरिक अभिनन्दन समारोह में शरीक होने जा रहे थे, तभी बापू करीब-करीब दौड़ते हुए उनकी ओर जाने लगे। तभी, एक पुलिस की लाठी उनकी पीठ पर आ गिरी, "उधर कहाँ जा रहे हो ? देखते नहीं, गाँधीजी का दोस्त उधर जा रहा है ?"

"लेकिन, गाँधी तो मैं ही हूँ।" बापू ने मन ही मन कहा। साथ ही, वे यह भी सोच रहे थे कि यदि वे जीवित होते, तो लाठी की मार का उन पर क्या असर होता ?"

तभी बापू की एकाग्रता भंग हुई। पत्रकार पूछ रहा था, "नुमाइश देखने नहीं चलोगे, बापू ?"

"क्या कोई और भी नुमाइश है ?" बापू ने उदास स्वर में कहा, "मैं तो यहाँ जो कुछ भी देख रहा हूँ, वह किसी नुमाइश से कम नहीं है। सोचा था, मेरा स्वप्न पूरा हो गया होगा—लेकिन देखता हूँ—सब कुछ वैसा ही है, जैसा मैं छोड़कर गया था ! खैर, नुमाइश भी देख लूँ।"

पत्रकार उन्हें एक विशाल मैदान में ले गया, जहाँ पण्डाल बना हुआ था और जिसमें कई स्टाल बने हुए थे। खाने-पीने की चीजों के अलावा, देश के विभिन्न भागों से आयी खादी-भण्डार की दूकानें थीं, जिनमें आधुनिक ढंग के कपड़े सजा कर रखे हुए थे। इन दूकानों के पास महिलाओं की अपार भीड़ थी। बापू के चेहरे पर प्रसन्नता की कली खिल गयी। बोले, "कम से कम, हमारी बहनों ने तो खादी अपना ली।"

पत्रकार ने हँसकर कहा, "आप पहले से भी अधिक आशावादी हो गये हैं, बापू ! क्या आप नहीं देख रहे हैं कि ये अत्याधुनिक महिलाएँ हैं, जो कम से कम कपड़ों से, शरीर को ढँकने का प्रयास करती हैं। खादी तो उनका लेटेस्ट फैशन है, जो माडर्न भी है और सस्ता भी।"

"सस्ता भी ?"

"और नहीं तो क्या ? गाँधी शताब्दी के उपलक्ष्य में, खादी के कपड़ों के मूल्यों में बेहद छूट मिल रही है। इसीलिए तो इतनी अधिक भीड़ है।"

पत्रकार ने वस्तुस्थिति समझाते हुए कहा।

बापू मन ही मन कुछ सोच रहे थे, तभी पत्रकार उन्हें किताबों के एक स्टाल पर ले गया, जहाँ गाँधीजी तथा गाँधीजी से सम्बन्धित पुस्तकों की प्रदर्शनी लगी हुई थी। काउंटर पर काफी भीड़ थी। लोग गाँधीजी की जीवनी खरीद रहे थे, और अपना जीवन सार्थक कर रहे थे। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा की एक प्रति उलट कर देखी, जिसमें

प्रकाशित संस्करण की संख्या दस लाख छपी हुई थी। उन्होंने विजयी मुद्रा से, पत्रकार को वह संख्या दिखलाते हुए कहा, "कुछ भी हो, लोगों में साक्षरता बढ़ी है, और लोग पुस्तकें खरीदने में रुचि ले रहे हैं।"

पत्रकार ने बापू की समझ पर तरस खाते हुए कहा, "जनता में पुस्तकें खरीदने की रुचि अवश्य उत्पन्न हुई है, लेकिन आपकी आत्म-कथा खरीदने की नहीं, बल्कि 'जेम्सब्राण्ड' तथा कर्नल रंजीत के उपन्यास पढ़ने की!"

"तो फिर, मेरी आत्मकथा का यह संस्करण दस लाख क्यों छपा है?" "दस लाख ही क्यों? दस लाख के, ऐसे अनेक संस्करण निकले हैं, लेकिन जनता उन्हें स्वयं नहीं खरीद रही है, बल्कि गाँधी-शताब्दी के नाम पर, जनता में जबर्दस्ती बिकवाई जा रही है। संस्थाओं से आग्रह किया जा रहा है कि वे आपकी आत्मकथा खरीदें और आपका नाम याद रखें।"

"तो इसमें बुरा क्या है?" बापू ने तर्क किया।

"मुझे कोई परेशानी नहीं है, बापू! लेकिन आपका 'शताब्दी-समारोह एक दिन समाप्त हो जायगा और लोग आपका नाम तक भूल जायेंगे। लेकिन इस समारोह के जरिये जो लोग पैसा बना रहे हैं उनका नाम अवश्य ही अमर हो जायगा। उनकी जो बड़ी-बड़ी हवेलियाँ बनेंगी, वह शताब्दियों तक, अपने मालिक की यादगार बनकर खड़ी रहेंगी।"

गाँधी जी का मुँह वितृष्णा से भर आया।

पत्रकार बापू के साथ उस स्टाल पर पहुँचा, जहाँ गाँधीजी के जीवन के महत्त्वपूर्ण चित्रों की प्रदर्शनी लगी हुई थी। उनके चित्र बिक्री के लिए भी रखे हुए थे। गाँधीजी बड़े मनोयोग से उन चित्रों की ओर देखने लगे। उन्हें लगा, जैसे उनका विगत जीवन उनके सामने खुला पड़ा हो। एक-एक चित्र देखते जाते थे, और अतीत के धुँधले चित्र उनके

सामने और भी अधिक स्पष्ट होते जा रहे थे। तभी, उन्होंने देखा दो अपटूडेट युवक, उनके एक चित्र की ओर विविध कोणों से देख रहे हैं। चित्र वास्तव में सुन्दर था। उनमें से एक युवक ने उस चित्र का दाम पूछा और बड़ी प्रसन्नता से वह चित्र खरीद लिया। बापू ने मधुर मुस्कान के साथ, पत्रकार की ओर देखा। पत्रकार कुछ कहना चाहता था, तभी उस दूसरे युवक ने अपने मित्र से पूछा, "तुम कब से गाँधीजी के भक्त हो गये हो, भाई ?"

पहले युवक ने हँसकर कहा, "तुम तो जानते ही हो कि मैं ईश्वर को भी नहीं मानता, फिर इन्सान की क्या बात है ? दरअसल, मैं अपने ड्राइंगरूम को नये सिरे से सजा रहा था। नयी डिजाइन के परदे खरीदे, नये कट के सोफासेट लिये, मेन्टल पीस के लिए विदेशी गुड़िया खरीदी। मतलब यह, कि जितना भी कुछ माडर्न कहा जाता है, सब कुछ लिया लेकिन फिर भी किसी चीज की कमी महसूस हो रही थी। यह चित्र देखा तो लगा—जैसे खोयी हुई चीज मिल गयी हो—"

आगे कुछ सुनने से पहले ही, बापू पत्रकार का हाथ पकड़ कर, करीब करीब उसे घसीटते हुए वहाँ से ले गये और बोले, "कहीं, खुली हवा में चलो। यहाँ मेरा दम घुट रहा है—"

"खुली हवा अब यहाँ कहाँ मिलेगी, बापू ? उसके लिए तो अब हमें स्वर्ग की ओर प्रस्थान करना पड़ेगा। लेकिन इससे पहले, मैं आपको एक दृश्य दिखलाना चाहता हूँ। शायद, उसे देखकर आपकी आत्मा को शान्ति मिल जाय।"

बापू शान्त थे, लेकिन उनके कदम तेजी से आगे बढ़ रहे थे। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें एक विशाल मैदान दिखायी दिया जहाँ दो राजनीतिक दलों की सभाएँ हो रही थीं। मैदान के दोनों ओर मंच बने हुए थे और लाउडस्पीकर से भीषण-भाषण सुनाई दे रहा था। दोनों ही दलों के नेता ऊँचे स्वर में जनता को समझा रहे थे। एक समय तो ऐसा आया, जब लगा कि अब लाउडस्पीकर से भाषण के बजाय रणभेरी

सुनने को मिलेगी। दोनों पार्टियों की आवाजें एक दूसरी में गड्मगड्ड हो गयी थी—बापू सुन रहे थे—

"असली कॉंग्रेस हम हैं, क्योंकि हम सच्चे गाँधीवादी हैं। हमारी कांग्रेस ने ही देश को स्वाधीनता दिलायी, हमने आज तक अनुशासन का पालन किया है और आगे भी करते रहेंगे...।"

और, एक अन्य स्वर था—"कॉंग्रेस न तो गाँधीजी की विरासत थी, न उन लोगों की है, जो आज अपने को गाँधीवादी होने का दम भर रहे हैं। गाँधीजी का स्वप्न था—रामराज्य का—अर्थात् समाजवाद का···सब फूलें, फलें···हम गाँधीजी के सच्चे अनुयायी हैं, क्योंकि हमने देश को समाजवाद की ओर उन्मुख किया है···"

पत्रकार ने चुटकी भरते हुए कहा, "आप किस कॉंग्रेस के अनुयायी हैं?"

"मैं किसी भी कॉंग्रेस का अनुयायी नहीं हूँ। सच तो यह है कि कॉंग्रेस उसी दिन मर गयी थी, जिस दिन देश को स्वराज्य मिल गया था। और, सच पूछो तो अब मेरे सौ साल पूरे हो चुके हैं···" और, इतना कह कर बापू पत्रकार के साथ उस सड़क पर हो लिए, जो कभी खत्म नहीं होती।



हार की जीत

फिल्म-अभिनेत्री को 'ब्लैक-मनी', चोर-बाजार करने वाले को सरकारी आर्डिनेंस तथा उपभोक्ता को देशी गेहूँ को देखकर जो आनंद होता है, वही आनंद मन्त्रीजी को अपनी कार को देखकर होता था। मंत्रालय के कार्य से जो समय बचता, वह 'कार' के अर्पण हो जाता था। 'कार' बड़ी थी, मजबूत थी तथा बहुत ही सुन्दर थी। ऐसी कार शहर में ही क्या, तमाम देश में कहीं नहीं दिखाई देती थी। मन्त्रीजी अपनी लड़की की तरह उसका ख्याल करते, अपने हाथों से उसकी झाड़-पोंछ करते तथा उसकी नित्य बढ़ती हुई सुन्दरता को देखकर प्रसन्न होते थे। ऐसी लगन, ऐसे प्यार, ऐसे स्नेह से कोई सच्चा प्रेमी अपने प्यारे को भी न चाहता होगा। उन्होंने अपना सब कुछ छोड़ दिया था। अपना यौवन उन्होंने देश की आज़ादी के लिए कुर्बान कर दिया था। रुपया, पैसा तथा माँ के रक्खे हुए सोने-चाँदी के जेवर उन्होंने देश के जवानों के लिए अर्पण कर दिये थे। जो कुछ अचल संपत्ति थी, वह स्कूलों तथा अस्पतालों की परिवृद्धि के लिए दान में दे दी थी। शहर से दूर एक कमरे वाले फ्लैटनुमा 'कॉटेज' में वे रहते थे। मन्त्रालय का दफ्तर तथा 'कॉटेज' मन्त्रीजी के दो विश्व थे। फालतू समय में वे अध्ययन करते थे किन्तु कार के बिना उन्हें सारा जीवन शून्य मालूम होता था। कई बार सभाओं तथा चर्चाओं के बीच उन्होंने कहा था, "मैं 'इस' के बिना नहीं रह सकूँगा"। उनके निकटवर्ती लोग जानते थे कि उनका 'इस' का संकेत कार की ही ओर

था। उसके रूप पर, उसकी चाल पर वे लट्टू थे। कहते, "ऐसी चलती है, मानो हवा में तैर रही हो।" विदेशों से जो भी बड़े-बड़े अतिथि आते थे, मन्त्रीजी की 'कार' में बैठे विना, हिंदुस्तान का सफर अधूरा मानते थे। कभी-कमार, समाचार पत्रों में 'कार' को लेकर मजेदार बातें प्रकाशित होती थीं। कोई उसे मंत्रीजी की बीबी कहता तो कोई उसे मंत्रीजी की प्रेयसी बना देता। लेकिन मंत्रीजी को इन बातों की कतई परवाह न थी। जब तक, सन्ध्या समय कार में बैठ कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते, उन्हें चैन न आता।

बरछासिंह उस इलाके का प्रसिद्ध बिजिनेस-मेन था। लोग किंचित् श्रद्धा तथा अधिक अश्रद्धा से ही उसका नाम लेते थे। पुलिस तथा खुफिया पुलिस वाले उसकी ओर आदर की दृष्टि से देखते थे तथा तीज त्यौहारों पर उससे पुरस्कार पाते थे। बरछासिंह ने मोटर बनाने का कारखाना खोलने के लिए तत्संबंधी मन्त्रालय के तमाम वरिष्ठ अधिकारियों से मुलाकात करने के बाद मन्त्रीजी से भेंट करने का काफी प्रयत्न किया था किन्तु मन्त्रीजी ने अपना उग्र रूप दिखलाकर उसे झिटकार दिया था। लेकिन बरछासिंह कोई मामूली बरछा नहीं था जो झिटकारने से दूर भागता। एक छुट्टी के दिन मन्त्रीजी के 'कॉटेज' में जा पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

मंत्रीजी ने गंभीर स्वर में पूछा, "यहाँ कैसे आ गये? जानते नहीं, मैं ठेकेदारों से अपने दफ्तर में मिलता हूँ?"

"लेकिन आप दफ्तर में भी तो नहीं मिलते।"

"किस काम से आये हो?" मंत्रीजी का स्वर अब शोला बन रहा था।

"मोटर की चाह खींच लायी।"

"लेकिन मैं तुम्हें पहले भी कई बार बतला चुका हूँ कि मोटर का कारखाना खोलने में मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकूँगा।" मंत्रीजी ने उद्विग्न स्वर में कहा।

बरछासिंह अब अपनी हँसी नहीं रोक सका।

"मैं कारखाने की बात नहीं कर रहा हूँ, मंत्रीजी। मैं तो आपकी मोटर देखने चला आया था।"

मंत्रीजी के चेहरे पर से गंभीरता का कवच एकाएक उतर गया। जैसे किसी आत्मीय से बात कर रहे हों, इस ढंग से वे बोले "अजीब जानवर है। देखोगे तो प्रसन्न हो जाओगे।"

"जानवर?" बरछासिंह ने कौतूहल मिश्रित स्वर में कहा, "मैं तो मोटर की बात कर रहा था।"

मंत्रीजी ने जैसे तंद्रा में ही कहा, "जो मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित कर ले, उसमें और इन्सान में फर्क ही क्या है?" फिर, जैसे आसमान से पृथ्वी पर आकर बोले, "हिंदुस्तान में ऐसी मोटरें दुर्लभ हैं।"

बरछासिंह ने कहा, "मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

"उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी।"

"सुना है, देखने में बड़ी खूबसूरत है।"

"क्या कहना! जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर इसकी छवि अंकित हो जाती है। मैं तो उसका गुलाम हो गया हूँ।"

मंत्रीजी तथा बरछासिंह दोनों 'कॉटेज' के पीछेवाले गॅरेज में पहुँचे। मंत्रीजी ने चमचमाती हुई कार की ओर संकेत करते हुए बड़े अभिमान से कहा, "देखते हो?"

बरछासिंह का अधिकतर संबंध ट्रकों और भारी जीपों से था लेकिन अच्छी मोटरें उसने न देखी हों, यह बात न थी। फिर भी, मंत्रीजी की इस कार की ओर वह देखता रह गया। उसने 'इम्पाला' देखी थी, फोर्ड की 'सीडन' देखी थी, लेकिन मंत्रीजी की इस कार ने उसका मन मोह लिया था।

"इसका नाम जान सकता हूँ?"

"क्राइस्लर ?" मंत्रीजी ने ऐसे ढंग से कहा, गोया मोटर का नहीं, अपना नाम बतला रहे हों ! बोले, "यह अमरीकी गाड़ी मुझे अफ्रीका-वालों ने उपहार में दी थी। ऐसी गाड़ियाँ अमरीका में ही देखने को मिलती हैं।"

"इसकी खूबियाँ जान सकता हूँ !'

"एक हो, तो बताऊँ ! "मंत्रीजी ने कार का गुणवर्णन करते हुए कहा, "पहली बात तो यह कि यह 'फ्लुइड ड्राइव' है !"

"फ्लुइड-ड्राइव ?"

"हाँ ! इसमें सभी हाइड्रालिक उपकरण लगे हुए हैं।"

बरछासिंह की बुद्ध के गले से 'फ्लुइड' तथा 'हाइड्रालिक' का अंग्रेजी मिश्रण उतर नहीं पाया। उसके चेहरेपर अज्ञान के भाव तैर आये। मन्त्रीजी ने समझाते हुए कहा, "इसमें गियर बदलने की कोई दिक्कत नहीं है ."

"अच्छा ?" बरछासिंह का आश्चर्य अब अपनी आखिरी सीमा पर था। उसने पूछा, "तो फिर स्पीड किस तरह घटती-बढ़ती है ?"

मन्त्रीजी ने दुनिया का रहस्य चुटकियों में हल करने के ढंग पर कहा, "मामूली-सी तो बात है। ड्राइव का बटन दबाया और गाड़ी शुरू। स्पीड बढ़ायी और गाड़ी का गियर अपने आप बदला। ब्रेक दबाया और गाड़ी फिर निचले गियर में।"

बरछासिंह बड़े गौर से मन्त्रीजी की बातें सुन रहा था। सहसा उसकी आँखों में कुटिलता का एक टुकड़ा तैर आया।

मन्त्रीजी ने जैसे उसे भाँपकर कहा, "लेकिन जानते हो, कोई इसे चुरा नहीं सकता। इसमें पार्किंग लॉककी सुविधा है। ताला बन्द कर दीजिए, तो कोई इसे ढकेल कर भी नहीं ले जा सकता।"

बरछासिंह ने मोटर की तमाम विशेषताओं का बखान सुनने के बाद मन्त्रीजी की ओर देखा। वह मन-ही-मन सोचने लगा, "भाग्य भी कितना बेढब है। ऐसी कार तो बरछासिंह के पास होनी चाहिये थी। इस

ब्रह्मचारी को इन चीजों से क्या लाभ ?" कुछ देर तक वह आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। उसके हृदय में हलचल होने लगी। बालकों की सी अधीरता से उसने कहा, "लेकिन मन्त्रीजी! इसकी चाल न देखी तो क्या देखा ?"

मन्त्रीजी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए, उनका हृदय अधीर हो उठा। कार को ड्राइव करते हुए, वे उसे गैरेज से बाहर ले आये। फिर, बड़ी अदा से कार का दाहिनी ओर का दरवाज़ा खोल कर बरछासिंह को बैठने का संकेत किया। फिर दरवाज़ा बन्द कर तथा कार का आधा चक्कर लगाकर, वे उसके बाएँ दरवाज़े की ओर आये। दरवाज़ा खोला और बड़ी फुर्ती से भीतर बैठ गये। स्टियरिंग पर हाथ रखा, इधर-उधर के कुछ बटन दबाये तथा कार वायु-वेग से रास्ता तय करने लगी। उसकी वह चाल देखकर बरछासिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह शहर का नामी व्यापारी था और जो वस्तु उसे पसंद आ जाए उस पर अपना अधिकार समझता था। उसके पास पैसे का बल था, बुद्धि उसके पैसों की दासी थी।

कार से उतरते ही मन्त्रीजी ने पूछा, "कहो कैसी है ?"

बरछासिंह ने कुटिल स्वर में कहा, "मंत्रीजी! यह गाड़ी नहीं, हवाई जहाज है। मैं यह गाड़ी आपके पास नहीं रहने दूँगा।"

बरछासिंह की उस दिन की बात से मन्त्रीजी के होश-हवास काफूर हो गये। नींद उनकी आँखों से रूठकर चली गयी। सारी रात वे बरछासिं के उस दिन के शब्दों का अर्थ लगाते रहते और रातभर गैरेज में बैठकर मोटर की रखवाली करते। बरछासिंह का भय उनके मन पर इस कदर छा गया कि मंत्रालय के काम में भी उनका मन न लगता। सारी दुनिया से ही वे विरक्त हो उठे। एक दिन, उन्होंने मन्त्रीपद से भी इस्तीफा दे दिया। उनके राजनीतिक जीवन का सूर्योदय जिन्होंने

देखा था, उसका इस प्रकार अस्त हुए देख राजनीतिक क्षेत्रों में अटकलबाजियाँ शुरू हो गयीं। किसी ने उन्हें इस युग का सबसे ईमानदार आदमी बतलाया, तो कोई उनके विषय में गलत-गलत धारणाएँ लगाने लगा। लेकिन, मंत्रीजी ने इन सारी बातों से संन्यास ले लिया था। वे 'कॉटेज' में ही रहते थे तथा अपना अधिकांश समय पढ़ने-लिखने में ही व्यतीत करते थे। एक दिन वे कुछ चिंतन कर रहे थे कि एकाएक फोन खनखना उठा। उनके चेहरे पर त्रास का भाव उभर आया। बेमन से ही, उन्होंने फोन का रिसीवर उठाया। बरछासिंह का स्वर पहचानने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं हुई। उधर से आवाज़ आ रही थी, "मंत्रीजी, मैं 'सदाचार' वालों के शिकंजे में फँस गया हूँ। इससे पहले कि लोग मेरा असली स्वरूप जान सकें, मैं शहर से दूर भाग जाना चाहता हूँ। आप अपनी मोटर लेकर यहाँ तक आ सकें तो बड़ी मेहरबानी होगी।"

बरछासिंह के मुँह से ये शब्द सुनकर मंत्रीजी का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। किसी प्रकार क्रोध पर नियंत्रण पाकर उन्होंने कहा, "माफ कीजिए! पाप को छिपाने में, मैं आपकी किसी भी प्रकार की सहायता नहीं कर सकूँगा।"

बरछासिंह आगे कुछ कह रहा था, कि मंत्रीजी ने फोन नीचे रख दिया।

उस दिन काफी देर तक, मंत्रीजी अन्यमनस्क-से, अपने कमरे में टहलते रहे। धीरे-धीरे साँझ धरतीपर उतर आयी। मन को बहलाने के विचार से, मंत्रीजी कॉटेज' के बाहर आये। गैरेज में से मोटर निकाली और सड़क के बायीं ओर से धीरे-धीरे ड्राइव करने लगे। अभी वे केवल एक ही मील दूर गये होंगे कि सहसा आवाज़ आयी—"भैया!"

मंत्रीजी अपने ही विचारों में खोये हुए थे। इतने में फिर से वही आवाज़ सुनाई दी, "भैया"! इस बार स्वर में आर्तता थी—"भैया, इस अपाहिज की भी बात सुनते जाना।"

मंत्रीजी की तंद्रा एकाएक टूटी। उन्होंने कार रोक दी। देखा एक अपाहिज सड़क के किनारे पड़ा कराह रहा है। उसके पास छोटी-सी गठरी भी थी। मोटर से उतरकर, उन्होंने सहानुभूति के स्वर में पूछा, "तुम्हें क्या कष्ट है, भाई ?"

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा, "भैया, मैं दुखिया हूँ, मुझ पर दया करो। मेरा गाँव यहाँ से तीन मील दूर है। मुझे गाड़ी में बिठा लो, परमात्मा तुम्हारा भला करेगा।"

"वहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"धन्वंतरीजी का नाम तो आपने सुना होगा। मैं उनका भाई हूँ"

"धन्वन्तरीजी ?" मन्त्रीजी ने मन ही मन नाम को दोहराया। पिछले चुनाव में, उनको जिताने में धन्वन्तरीजी का बहुत बड़ा हाथ था। उन्होंने अपाहिज को उठाकर, कारके दाहिने दरवाजे में से भीतर बैठाया। फिर, दरवाजा बन्द कर वे बाएँ दरवाजे की ओर जाने लगे। अभी वे दरवाजे तक पहुँच ही रहे थे कि इतने में मोटर स्टार्ट हो गयी। यह अपाहिज अब तन कर बैठ गया था और कार को चला रहा था। उनके मुख से भय, विस्मय और निराशा से मिली-जुली एक चीख निकल गयी।

वह अपाहिज और कोई नहीं, सेठ बरछासिंह था ! मन्त्रीजी कुछ देर तक सकते की सी हालत में खड़े रहे। फिर, कुछ निश्चय कर पूरे बल से चिल्लाये, "जरा ठहर जाओ।"

बरछासिंह ने वह आवाज़ सुनकर कार रोक दी। फिर बड़े इत्मीनान से, स्टियरिंग पर हाथ फेरते हुए कहा, "मंत्रीजी, यह कार अब आपको नहीं दूँगा।"

"लेकिन, मेरी बात तो सुनते जाओ।"

बरछासिंह रुक गया। मंत्रीजी ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी दृष्टि से देखा. जैसे कोई मरीज़ लंबी फीस सुनकर डॉक्टर की ओर देखता है। फिर कहा, "यह कार अब तुम्हारी हो चुकी। मैं तुमसे

इसे वापस करने के लिए न कहूँगा। लेकिन, बरछासिंह, केवल एक प्रार्थना करता हूँ, उसे अस्वीकार न करना। नहीं तो मेरा दिल टूट जाएगा।"

"मंत्रीजी, आज्ञा कीजिए। कहिए तो लाख-पचास हज़ार आपके नाम बैंक में जमा करवा दूँ। आपका गुलाम हूँ। हाँ, यह कार आपको न दूँगा।"

"अब उसका नाम न लो। मैं तुमसे इसके विषय में कुछ नहीं कहूँगा। मेरी प्रार्थना यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।"

बरछासिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। मंत्रीजी के इन शब्दों का क्या अर्थ हो सकता है? अगर मंत्रीजी चाहें तो अभी फोन करके मुझे अगली पुलिस चौकीपर पकड़वा दे सकते हैं। उसने बहुत सोचा, परंतु कुछ समझ में न आ सका। हारकर, उसने अपनी आँखें मंत्रीजी के चेहरे पर टिका दीं और पूछा, "मंत्रीजी, इसमें आपको क्या डर है?"

सुनकर मंत्रीजी ने उत्तर दिया, "लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी भी मंत्रीपर विश्वास न करेंगे।"

और यह कहते-कहते उन्होंने कार से इस तरह मुँह मोड़ लिया जैसे उनका उससे कभी कोई संबंध ही न रहा हो। मंत्रीजी चले गये किंतु उनके वे शब्द बरछासिंह के कानों में गूँजते रहे। सोचता रहा, "मन्त्री होकर भी इनके विचार कितने ऊँचे हैं। कैसा पवित्र भाव है। उन्हें इस कार से मोह था। इसे देखकर ही उनकी सुबह और शाम होती थी। कहते थे, इसके बिना रह न सकूँगा। इसकी रखवाली में कई रातें उन्होंने जागकर बिता दीं किंतु आज उनके चेहरे पर दुःख की रेखा तक नहीं दिखायी देती थी। वे केवल दूसरे मन्त्रियों के कल्याण की सोचते रहे। अपने स्वार्थ की तो सभी सोचते हैं। सचमुच मन्त्रीजी कोई मामूली मन्त्री नहीं—इन्सान है।"

समय बीतता गया। महँगाई बढ़ती रही और शान्ति पूर्णसह-अस्तित्व के नारों में एटम बम की आवाज़ लुप्त होती रही। लेकिन मन्त्रीजी के दैनिक कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। एक प्रातःकाल वे रोज़ की ही तरह 'कॉटेज' से बाहर निकले। किसी मन्त्र-मुग्ध की तरह उनके पैर गैरेज की ओर मुड़े। किन्तु फाटक के पास पहुँचते ही उन्हें अपनी गलती महसूस हुई। लेकिन यह क्या? मन्त्रीजी के मुख से एक हल्की-सी चीख निकल गयी। गैरेज का फाटक खुला पड़ा था और उसमें मन्त्रीजी की मोटर अपनी पुरानी शान के साथ विद्यमान थी।

मन्त्रीजी करीब-करीब दौड़ते हुए कार के पास पहुँचे और उसके बोनेट पर, मुँह रखकर रोने लगे। बार-बार उसकी बॉडी पर हाथ फेरते और कहते, "अब कोई किसी मन्त्री को वोट देने में नहीं हिचकिचाएगा। कोई मन्त्री पर अविश्वास नहीं करेगा।"

काफी देर तक वे बोनेट की चमकीली सतह में पड़े अपने प्रतिबिम्ब को निहारते रहे। सहसा उन्हें उसमें एक परिचित शक्ल दिखायी देने लगी। उन्हें लगा जैसे अब वह प्रतिबिम्ब उनका अकेले का नहीं बल्कि उसमें बरछासिंह की भी छवी झिलमिला रही है।

काफी देर तक वे प्रेम के उस अपूर्व संगम का आनन्द लूटते रहे।



माफ़ कीजिए

सन्त वचन है—

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुवा, पण्डित भया न कोय,
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय !"

पण्डित होने का यह पुराना फार्म्यूला अब प्रचलित है या नहीं, यह तो कोई महान् पण्डित ही बतला सकता है। मैं तो सीधे-सादे व्यवहार का एक मन्त्र जानता हूँ, जिसे सड़क पर के मोची से लेकर प्रदेश के राज्यपाल तक सभी स्वीकार करते हैं। वह मन्त्र है, "माफ़ कीजिए !" सामाजिक व्यवहार में ये पाँच अक्षर अनासीन की चार-दवाइयों के समान, तुरन्त अपना असर प्रकट करते हैं, और समाज में आपकी प्रतिष्ठा को कायम रखते हैं। सुनने वाला हिन्दी प्रेमी हो या हिन्दी विरोधी, लेकिन इस शब्दावली से वह अच्छी तरह परिचित रहता है। मज़े की बात तो यह है कि विरोधी पक्ष जितना ही सशक्त क्यों न हो, 'माफ कीजिये' की एक गोली उसे परास्त करने के लिए काफी है। दुश्मन गोरा हो या काला हो, पड़ोसी हो या विदेशी हो, प्रेमिका हो या पत्नी हो, 'माफ कीजिए' की एक बुलेट खाते ही वह आपके शरण आ जाती हैं और आपसे पनाह माँगती हैं।

मेरी बात पर यकीन न आता हो तो आप खुद ही आज़माकर देख लीजिये। आपके जीवन में ऐसे हजारों मौके आयेंगे जब आपका क्रोध, आपका पौरुष, आपके सामने आत्म-समर्पण कर देगा और आप निर्बल से निर्बल प्रतिद्वन्द्वी को भी माफ कर देंगे। दूर जाने की

जरूरत नहीं, आप अपने ही घर से शुरू कीजिए। जीवन में आपने सैकड़ों पार्टियाँ खायी होंगी। सम्भव है, एक आध पार्टी आपने भी दी हो। ऐसी ही किसी पार्टी का स्मरण कीजिए। आपने अपने लड़के के मुण्डन के सिलसिले में एक शानदार पार्टी का आयोजन किया है। इष्ट मित्रों के अलावा, आपने अपने बास, उनकी पत्नी तथा दफ्तर के अन्य कर्मचारियों को भी बुलाया है। आपका असली उद्देश्य यह है कि साहब बहादुर की पत्नी पर आपका रोब पड़े और आपका भविष्य उज्ज्वल बन जाए। इस प्रसंग के लिए आपने पत्नी के लिए बनारसी साड़ी खरीदी है तथा खुद अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहनने का फैसला किया है। पायजामा तो धोबी के यहाँ से धुलकर आ गया है। सिर्फ अचकन में कुछ बटन टाँकने हैं, जिसके लिए आपने पत्नी से पहले से कह रखा है। पार्टी वाले दिन आपकी पत्नी सुबह से ही व्यस्त रहती है। पार्टी के लिए आवश्यक सामानों की खरीद-फरोख्त से लेकर व्यंजन तैयार करने तक का सभी काम उसी को करना है। दिन भर वह व्यस्त रहती है। कब शाम हो जाती है, पता ही नहीं चलता। उफ ! मेहमानों का आना भी शुरू हो गया। अभी तो पत्नी तैयार भी नहीं हो पायी। खैर, पहले आप तो तैयार हो जाइए। लीजिये जनाब अभी तैयार हुआ। यह रहा पायजामा, यह रहा कुरता और—और यह रही अचकन। लेकिन यह क्या ? इसके बटन क्या हो गये ? सावित्री ? जाने कहाँ मर गयी ? सावित्री पति की पुकार सुनते ही, जल्दीबाजी में तैयार होकर आपके सामने उपस्थित हो जाती है। उसे देखते ही, खासकर उसकी बनारसी साड़ी देखते ही आपका क्रोध उफन उठता है। "इतने दिन से तुम्हें बटन टाँकने के लिये कह रखा था और अभी तक—" आप पूरी तरह गुस्सा उतार भी नहीं पाते कि वह रुआँसे से स्वर में कह उठती है, 'माफ़ कीजिये, जल्दीबाजी में कुछ याद नहीं रहा, लाइये, अभी टाँक देती हूँ।' उसकी वे निष्पाप और भयचकित हिरनी सी आँखें देखकर आपका क्रोध जाने कहाँ उड़

जाता है और आप सांत्वनापूर्ण स्वर में कहते हैं, 'कोई बात नहीं, सावित्री। केवल कुरते से ही काम चल जाएगा। वैसे आज गरमी भी है।'

'माफ कीजिए' की कैफियत में एक किस्सा और सुन लीजिये। एक बार मेरे एक मित्र किसी बारात में शिरकत करने के लिये घर से निकल पड़े। काफी देर तक उन्होंने मेकप में समय लगाया था। सफेद पायजामा, चुन्नटदार कुरता और उस पर इत्र की बहार! मित्र महोदय नशे की सी हालत में थे। कभी कुरते की चुन्नटदार बाहों में से झांकने वाली अपनी मुसुक को देखकर मन ही मन इतराते तो कभी इत्र की खुशबू में खो जाते। सहसा उनका नशा उखड़ा। उन्हें लगा जैसे कहीं से आसमान ही चू पड़ा हो। सर से लेकर पायजामे तक पानी की धार बह पड़ी। मित्र महोदय ने आग्नेय नेत्रों से ऊपर देखा। एक सज्जन बरामदे में खड़े दिखाई दिये। उनके हाथ में एक बाल्टी थी, जिसमें का प्रसाद मित्र महोदय को अभी-अभी मिल चुका था। मित्र ने गुस्से में कहा, 'देखकर नहीं फेंकते ?'

बरामदे में खड़े उस व्यक्ति ने शान्त स्वर में कहा, 'माफ कीजिए, गलती से आपके ऊपर पानी गिर पड़ा। लेकिन, पानी अच्छा था।'

पानी की शुद्धता अथवा अशुद्धता की गारण्टी होने से पहले ही मित्र महोदय पानी-पानी हो चुके थे।

'माफ कीजिए' का प्रभाव रेल की यात्रा में भी देखने को मिलता है। एक बार किसी सरकारी काम से मैं दिल्ली जा रहा था। दूर का सफर था और कुछ दिनों तक दिल्ली में रहना था, इसलिए मैंने पत्नी को भी साथ ले लिया था। डिब्बे में काफी भीड़ थी, लेकिन किसी प्रकार हमें पाँव फैलाने की जगह मिल गयी थी। किसी जंक्शन पर गाड़ी रुकी और मैं कुछ खाने-पीने का सामान लेने के लिए नीचे उतरा। प्लेटफार्म काफी लंबा था और सामान लाते-लाते गाड़ी के छूटने का समय हो आया। किसी प्रकार मैं अपने डिब्बे में चढ़ा

और अपनी सीट तक पहुँचा। सामान पत्नी की ओर बढ़ाया और खुद सीट पर बैठ ही रहा था। लेकिन यह क्या ? मेरी जगह एक महिला मेरी सीट पर बैठी हुई थी। मैंने पत्नी से पूछा लेकिन वह खामोश रही। महिला ने मेरी पूरी जगह छेक ली थी और अब पैर फैलाने की क्या, बैठने की भी कोई गुंजाइश न थी। महिला के पास उसका पति दुबक कर खड़ा था। मुझे उनकी यह शरारत देखकर काफ़ी गुस्सा हो आया। मैंने उस महिला को लक्ष्य कर कहा, "यह कहाँ की बदतमीजी है ? बिना पूछे आप मेरी सीट पर बैठ गयीं ?" महिला के चेहरे पर पहले तो प्रतिकार करने का भाव उमड़ा लेकिन फिर उसने शान्त स्वर में, किन्तु अपने स्थान से एक इंच खिसके बिना ही जवाब दिया, "माफ कीजिए, मेरा ख्याल था कि यह सीट खाली है। आप कहें तो अभी उठ जाती हूँ।"

जाने क्या हो गया मुझको। मैंने शांत स्वर में कहा, "नहीं-नहीं, यह बात नहीं। इतनी तो जगह है। मैं कहीं भी बैठ जाऊँगा। और, भाई साहब आप भी खड़े क्यों हैं ? आप भी बैठ जाइए न।"

और दिल्ली पहुँचते-पहुँचते हम लोग अच्छे खासे दोस्त बन गये।

राह चलते समय कितनी ही बार एक दूसरे के धक्के खाने पड़ते हैं। पुरुष होने पर 'माफ कीजिए' और महिला होने पर 'सारी' कर देने से धक्के का असर जाता रहता है। आप बड़ी तेजी में चले जा रहे हैं। आपको न अपना ख्याल है न लोगों का। इतने में सामने से कोई सज्जन हाथ में छाता लेकर आपकी ही ओर आ धमकते हैं। उनके छाते की तिल्ली आपकी तिल्ली से संपर्क स्थापित करने की कोशिश करती है और तब आपका ध्यान टूटता है। क्षण भर के लिए, आपकी आखें लाल हो जाती हैं, लेकिन इतने ही में 'माफ कीजिए' का परिचित स्वर सुनाई पड़ता है और आप क्षमादान करते हुए आगे बढ़ जाते हैं।

ये सब 'माफ कीजिये' के करिश्में हैं। हमारी कितनी ही समस्यायें तथा सिर-दर्द केवल 'माफ़ कीजिए' कह देने से या सुन लेने से दूर हो जाते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि हमारे पड़ोसी भी हमारी इस नीति को समझ लेते और इससे लाभ उठाते। न कभी सीमा की समस्या रहती न अणु-बम का खतरा रहता और फिर भी अगर कभी कोई पड़ोसी दुश्मन बन कर हमारी सीमा में घुस-पैठ करता तो हम उसे इस कदर घुड़क देते कि वह गर्दन झुका कर माफी माँगता और फिर सिर पर पाँव रखकर भाग जाता।



अपना प्रकाशन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी